

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 180007

UNIVERSAL
LIBRARY

मेरी मुक्तिकी कहानी

टॉल्स्टॉयके 'A Confession' और 'Recollections'
का अनुवाद

अनुवादक

श्री रामनाथ 'सुमन'
श्री परमेश्वरीदयाल विद्यार्थी

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक,
मार्तण्ड ठपाध्याय (मंत्रि,
अस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

अक्तूबर १९४० : २०००

दिसंबर १९४४ : १०००

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक,
अमरचंद्र जैन
राजहंस प्रेस,
दिल्ली

मेरी मुक्तिकी कहानी

: १ :

मेरा अपतिस्मा और पालन-पोषण ईसाई मतमें हुआ था। मुझे बाल्यावस्थामें तथा किशोर व युवावस्थामें इसी मतके धार्मिक विश्वासोंकी शिक्षा-दीक्षा दी गई थी। परंतु जब मैं १८ सालकी उम्रमें यूनिवर्सिटीसे निकला तो जो बातें मुझे सिखाई-पढ़ाई गई थीं उनमेंसे किसीपर मेरा विश्वास नहीं रह गया था।

जहांतक मुझे याद पड़ता है मैं कह सकता हूं कि मुझे जो कुछ सिखाया-पढ़ाया गया था और मेरे इर्द-गिर्दके बड़े-बूढ़े लोग जिन बातोंको मानते थे उनपर मेरा पक्का विश्वास कभी नहीं था, फिर भी मैं उनपर भरोसा करता था; परंतु मेरा यह भरोसा भी बड़ा डावांडोल था।

मुझे याद है कि जब मैं पूरे ग्यारह सालका भी न था, तब स्कूलका क्लाडीमीर मिलयटिन नामका छात्र (जिसकी बहुत दिन हुए मृत्यु हो गई) एक रविवारको हमारे यहां आया और उसने एक सबसे ताज़ी नवीन बात हमें सुनाई, जिसकी खोज उसके स्कूलमें हुई थी। खोज यह हुई थी कि ईश्वर नामकी कोई चीज़ नहीं है और उसके बारेमें हम लोगोंको जो कुछ सिखाया जाता है वह सब काल्पनिक है (यह घटना १८३८ ई०की है)। मुझे याद है कि मेरे बड़े भाइयोंने इस खबरमें कितनी दिलचस्पी ली थी। उन्होंने मुझे भी अपनी मंत्रणामें बुलाया। हम सब के सब खूब उत्तेजित हो गये थे और हमने यह स्वीकार किया कि यह खबर बड़ी मनोरंजक है और बिल्कुल मुमकिन है।

मुझे यह भी याद है कि जब मेरे बड़े भाई दमित्री, जो उस वक्त यूनिवर्सिटीमें पढ़ रहे थे, एकाएक अपने स्वाभाविक जोश-खरोशके साथ

धर्म-मार्गपर झुक पड़े, गिर्जेकी सब प्रार्थनाओं एवं उपदेशोंमें हिस्सा लेने लगे और उपवास करने तथा पवित्र एवं सदाचारपूर्ण जीवन चिताने लगे। तब हम सब—हमारे बड़े-बूढ़े तक—बराबर उनकी हँसी उड़ाते और न मालूम किस वजहसे उनको 'नूह' कहते थे। मुझे याद है कि कजान यूनिवर्सिटीके प्रबंधक पुज़िन-मुश्किनने एक बार हमें अपने घर नृत्यके लिए न्यौता दिया। हमारे भाई उनका न्यौता मंजूर नहीं कर रहे थे, तब उन्होंने व्यंगसे यह तर्क करके उनको किसी तरह राज़ी किया कि डेविड-तक आर्कके सामने नाचे थें। मैं अपने बड़े-बूढ़ोंके इन मज़ाकोंमें रस लेता था और इनसे मैंने यह नतीजा निकाला था कि यद्यपि प्रश्नोत्तरपाठ- (धर्मपुस्तक) की जानकारी और गिर्जेमें जाना जरूरी है, पर किसीको इन बातोंको ज़्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए। मुझे यह भी याद है कि लड़कपनमें मैंने वाल्टेयरकी रचनाएँ पढ़ी थीं और उनके धर्मका उपहास उड़ानेसे मुझे दुःख तो क्या होता, उल्टे मेग बहुत मनोरंजन होता था।

धर्मपर मेरी अनास्था ठीक उसी प्रकार हुई जिस प्रकार हमारे समान शिक्षा पाये हुए लोगोंमें अक्सर हो जाती है। मैं समझता हूँ कि अधिकतर यह बात इस तरह होती है : और लोगोंकी तरह कोई एक आदमी ऐसे उसूलोंके आधारपर ज़िंदगी बसर करता है जिनका धार्मिक सिद्धांतोंसे न सिर्फ़ कोई ताल्लुक नहीं होता बल्कि आमतौरसे वे उनके विरोधी होते हैं। धार्मिक सिद्धांतोंका जीवन पर कोई असर नहीं रहता। न तो दूसरोंके प्रति उनके मुताबिक आचरण किया जाता है और न अपनी ज़िंदगीमें आदमी उनपर कोई ध्यान देता है। धार्मिक सिद्धांत ज़िंदगीसे अलग और उससे दूर माने जाते हैं। अगर उनका कहीं दर्शन होता है तो वे ज़िंदगीसे अलग एक बाहरी चीज़के रूपमें दिखाई पड़ते हैं।

आजकलकी भांति उस समय भी किसीके जीवन अथवा आचरणसे यह फैसला करना कि वह आस्तिक है या नास्तिक असंभव था और

अब भी है । अगर अपनेको खुलेश्राम कट्टर धार्मिक कहनेवालेमें और अपनेको विधर्मी कहनेवालेमें कोई फर्क है तो वह धार्मिकोंके पक्षमें नहीं है । इस वक्तकी तरह उस समय भी खुलेश्राम अपनी धार्मिकताका एलान करनेवाले ज्यादातर उन्हीं आदमियोंमें मिलते थे जो हीनबुद्धि और बेरहम होते थे, पर अपनेको बहुत ज्यादा बुकत देते थे । योग्यता, सच्चाई, विश्वसनीयता, शीलस्वभाव और सदाचरण अक्सर नास्तिकोंमें ही पाया जाता था ।

स्कूलोंमें धर्म-पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं और वहांसे विद्यार्थियोंको गिर्जे भेजा जाता है । सरकारी अफसरोंको 'कम्प्यूनियन' (प्रभु ईसाके स्मरणार्थ भोज जिसमें ध्यान करके उनके साथ संपर्क स्थापित किया जाता है) प्राप्त करनेका प्रमाणपत्र पेश करना पड़ता है । पर हमारी श्रेणीका कोई आदमी, जिसने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है और जो सरकारी नौकरीमें नहीं है, आज भी १०-२० साल बिता दे सकता है और उसे एक बार भी याद नहीं आयेगा कि वह ईसाइयोंके बीच रह रहा है और खुद कट्टर ईसाई मतका सदस्य समझा जाता है । उस ज़मानेमें तो यह बात और सरल थी ।

इस तरह पहले भी यही बात होती थी और अब भी होती है कि धार्मिक सिद्धांत लोगोंकी देखादेखी या बाहरी दबावसे मान लिये जाते हैं और ज़िदगीका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होनेपर, जो उसके विपरीत होता है, वे बिखरने लगते हैं । और मज़ा यह है कि बहुधा आदमी इस कल्पनामें रहता है कि बचपनमें उसे धार्मिक सिद्धांत बताये गये थे वह उनका पालन कर रहा है, जबकि उसके आचरणमें उनका नाम-निशान भी बाकी नहीं होता ।

'एस' नामके एक होशियार और सत्यवादी आदमीने एक बार मुझे अपनी कहानी सुनाई थी कि कैसे वह नास्तिक बन गया । जब वह २६ सालका था, तबकी बात है । वह शिकार खेलने गया । रातके वक्त एक जगह पड़ाव डाला गया । बचपनसे चली आई आदतकी

वजहसे उसने शामके वक्त झुककर प्रार्थना शुरू कर दी। इस शिकार-में उसका बड़ा भाई भी साथ था। वह घामपर लेटा हुआ अपने छोटे भाईके इस कामको देख रहा था। जब 'एस' प्रार्थना खत्म कर चुका और रातमें आराम करनेकी तैयारी करने लगा तब उसके बड़े भाई-ने कहा—'अच्छा ! तुम अभीतक यह सब करते जाते हो ?'

उन्होंने एक-दूसरेसे और कुछ नहीं कहा। लेकिन उस दिनसे 'एस'ने प्रार्थना करना या गिर्जेमें जाना छोड़ दिया। और अब उसे प्रार्थना छोड़े, उपासना किये या गिर्जेमें गये तीस साल हो चुके हैं। ऐसा उसने इसलिए नहीं किया कि वह अपने भाईके विश्वासों या विचारोंको समझकर उन्हें अपना चुका था या खुद अपनी आत्मामें कुछ फैसला कर चुका था। ऐसा उसने सिर्फ इसलिए किया कि उसके भाईके कहे हुए शब्दने उस दीवारको धक्का देनेवाली उंगलीका काम किया, जो खुद अपने बोझसे गिरनेको हो रही हो। भाईके शब्द ने सिर्फ इतनी-सी बात जाहिर कर दी कि वह समझता था धर्मनिष्ठा कायम है परंतु वास्तवमें बहुत दिनों पहलेसे उसका सफाया हो चुका था, इसलिए प्रार्थनाके वक्त कुछ शब्दोंका दोहराना, कासके चिन्ह बनाना या आराधनाके लिए घुटने मोड़ कर बैठना सब व्यर्थ था। जब उसे इन कृत्योंकी निरर्थकताका अनुभव हुआ तब वह उन्हें जारी नहीं रख सका।

ज्यादातर आदमियोंके साथ इसी प्रकार होता रहा है और होता है। मैं उन लोगोंकी बात कह रहा हूँ जिन्होंने हमारे दर्जेकी तालीम पाई है और जो अपने प्रति ईमानदार हैं। मैं उन लोगोंकी बात नहीं कह रहा हूँ जो दुनियावी इरादों और आकांक्षाओंको पूरा करनेके लिए धर्माचरणको साधन बनाते हैं। (ऐसे आदमी सबसे बड़े नास्तिक हैं; क्योंकि अगर उनके लिए धर्मनिष्ठा सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति करनेका उपाय है तो फिर वह वास्तवमें धर्मनिष्ठा नहीं है।) हमारी तरहकी शिक्षा पाये हुए इन लोगोंकी स्थिति यह है कि ज्ञान और जीवनके

प्रकाशने एक बनावटी इमारतको ढहा दिया है और उन्होंने या तो यह बात देख ली है और उस जगहकी सफाई करदी है या फिर अभीतक इधर उनका ध्यान ही नहीं गया है ।

दूसरोंकी तरह मेरी भी गति हुई; बचपनसे सिखाये गये धार्मिक सिद्धांत लुप्त हो गये । लेकिन इतना फर्क जरूर रहा कि १५ सालकी उम्रसे मैंने दार्शनिक ग्रंथोंको पढ़ना शुरू कर दिया जिससे धर्म-सिद्धांतों का त्याग छोटी उम्रमें ही सचेत मनसे हुआ । सोलह सालका होते ही मैंने स्वेच्छासे प्रार्थना करनी बंद कर दी । मेरा चचे (गिर्जाघर) जाना और उपवास करना छूट गया । जो कुछ मुझे बचपनमें सिखाया गया था उसमें मेरा विश्वास नहीं रह गया था; लेकिन कोई-न-कोई चीज़ ऐसी जरूर थी जिसमें मैं विश्वास करता था । वह कौन-सी चीज़ है जिसमें मेरा विश्वास था, यह उस समय मैं नहीं बता सकता था । मैं ईश्वरमें विश्वास करता था या यो कह सकते हैं कि ईश्वरके अस्तित्व से इन्कार नहीं करता था, पर उस वक्त यह बताना मेरे लिए असंभव था कि वह ईश्वर किस तरहका है । मैं ईसा और उनकी शिद्दाओंको भी अस्वीकार नहीं करता था; लेकिन उनकी शिद्दाएं क्या हैं, यह मैं नहीं कह सकता था ।

जब मैं उस ज़मानेकी तरफ नज़र दौड़ाता हूँ तो अब मुझे साफ-साफ दिखाई पड़ता है कि मेरी निष्ठा—मेरी एकमात्र वास्तविक निष्ठा—जो यदि पाशविक प्रवृत्तियोंको छोड़ दूँ तो मेरे जीवनको गति देती थी । मेरा यह विश्वास था कि मुझे अपनेको पूर्ण बनाना चाहिए । लेकिन इस पूर्णताके मानी क्या हैं या उसका प्रयोजन क्या है, इसे मैं नहीं बता सकता था । मैंने मानसिक दृष्टिसे अपनेको पूर्ण बनानेकी कोशिश की—मैंने हर एक चीज़का, जिसका अध्ययन कर सकता था, किया । मैंने अपनी संकल्प-शक्ति पूर्ण करनेकी कोशिश की; मैंने ऐसे नियम बनाये जिनका पालन करने की मैं कोशिश करता था; मैंने शारीरिक दृष्टिसे भी अपनेको पूर्ण किया—हर तरहकी कसरतोंसे अपनी ताकत

बढ़ाने और शरीरमें फुर्ती लानेकी कोशिश की और सब तरहके सुख-साधनोंके त्यागसे अपनी सहनशक्ति और धीरज बढ़ानेका यत्न किया। मैं यह सब पूर्णताकी खोजमें कर रहा था। निश्चय ही इन सबकी शुरुआत नैतिक पूर्णतासे हुई, पर जल्द ही उसका स्थान सब तरहकी सामान्य परिपूर्णताने ले लिया, अर्थात् मेरे अंदर यह इच्छा पैदा हुई कि मैं न सिर्फ अपनी और ईश्वरकी दृष्टिमें, बल्कि दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें भी अच्छा बनूँ। और बहुत जल्द यह चेष्टा फिर दूसरोंसे ज्यादा शक्तिशाली बननेकी इच्छामें बदल गयी और मनमें यह बात पैदा हुई कि मैं दूसरोंसे अधिक प्रसिद्ध, अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अधिक धनी बनूँ।

: २ :

किसी दिन मैं अपनी जवानीके दस सालोंके जीवनकी संवेदना-शील और शिक्षाप्रद कहानी बयान करूँगा। मेरा खयाल है कि और भी बहुतेरे आदमियोंको ऐसा ही अनुभव हुआ होगा। अपनी संपूर्ण आत्मासे मैं अच्छा बनना चाहता था; लेकिन जब मैंने अच्छा बननेकी कोशिश शुरू की तो मैं जवान था, वासनाओंका दास था और अकेला था—बिल्कुल अकेला। जब-जब मैंने नैतिक रूपसे भला बननेकी अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की, तब-तब हर बार मेरा उपहास किया गया और दिल्लगी उड़ाई गई; लेकिन ज्यों ही मैं तुच्छ वासनाओंके आगे सिर झुका देता था, मेरी तारीफ की जाती और मुझे बढ़ावा दिया जाता था।

आकांक्षा, शक्तिका प्रेम, लोभ, कामुकता, लंपटता, घमंड, क्रोध और प्रतिहिंसा सबकी इज्जत की जाती थी।

इन वासनाओंके आगे सिर झुकाकर मैं वयस्क लोगोंकी श्रेणीमें जा बैठा और मैंने अनुभव किया कि वे मेरा समर्थन करते हैं। मेरी बुआ, जिनके साथ मैं रहता था, खुद बहुत ही शुद्ध और ऊंचे चरित्रकी थीं, लेकिन वह भी मुझसे सदा कहा करती थीं कि उनकी प्रबल इच्छा है कि किसी विवाहिता स्त्रीसे मेरा संबंध हो जाय। 'जवान आदमीको बनानेमें कोई चीज़ उतना काम नहीं करती जितना एक कुलीन महिलासे धनिष्ठता काम करती है'। मेरे लिए दूसरा सुख वह यह चाहती थीं कि मैं एडीकांग (किसी सेनापति या प्रतिष्ठित पदाधिकारीका शरीर-रक्षक), और संभव हो तो सम्राट्का एडीकांग, बनूं। पर सबसे बड़ा सुख तो उन्हें इस बातसे होगा कि मैं किसी अत्यंत धनी कन्यासे विवाह कर लूं जिससे मेरे पास दासोंकी ज्यादा-से-ज्यादा संख्या होजाय।

बिना घास, घृणा और हृदय-वेदनाके मैं उन सालोंका खयाल नहीं कर सकता। मैंने लड़ाईमें आदमियोंका वध किया, मैंने लोगोंका वध करनेके लिए उनको द्वंद्वयुद्धमें ललकारा; मैंने जुआ खेला, उसमें हारा; मैंने किसानोंसे बेगाए ली और उन्हें सज़ाएं दीं; बुरे आचरण किये और लोगोंको धोखा दिया। मिथ्या भाषण, लोगोंको लूटना, हर तरहका व्यभिचार, मद्यपान, हिंसा, खून—मतलब कोई ऐसा अपराध नहीं था जिसे मैंने न किया हो, और मज़ा यह कि इन सब कामोंके लिए लोग मेरे आचरणकी तारीफ़ करते थे और मेरे ज़मानेके आदमियोंने मुझे और लोगोंके मुकाबलेमें सदाचारी व्यक्ति समझा और समझते हैं।

दस सालोंतक मेरा यही जीवन था।

इसी समय मैंने अहंकार, लोभ और अभिमानवश लिखना शुरू किया। मैंने अपनी रचनाओंमें वही किया जो मैं अपनी ज़िंदगीमें करता था। प्रसिद्धि और धन प्राप्त करनेके लिए मैं लिखता था और इसके लिए अच्छाईको छिपाना और बुराईका प्रदर्शन करना ज़रूरी था। मैंने यही किया। न जाने कितनी बार मैंने अपनी रचनाओंमें उदासीनता अथवा उपहासके जाभेमें, अपनी भलाईकी तरफ़ जानेवाली

उन प्रेरणाओंको छिपाने और दबानेकी कोशिश की, जिनसे मेरे जीवनकी सार्थकता थी। मैं इसमें सफल हुआ और इसके लिए मेरी प्रशंसा की गई।

छुब्बीस* सालकी उम्रमें, मैं लड़ाईके बाद पीटर्सबर्ग लौटा और लेखकोंसे मिला। उन्होंने मुझे अपनाया, स्वागत किया और मेरी चापलूसी की। और इसके पहले कि मैं अपने चारों ओर दृष्टि डालता, मैंने उन लेखकोंके जीवन-संबंधी विचार ग्रहण कर लिये थे, जिनके बीच मैं आया था। इन विचारोंने मेरे भला बननेकी पूर्वकी सारी प्रेरणाओंका लोप कर दिया। इन विचारोंने ऐसा सिद्धांत प्रस्तुत कर दिया जिससे मेरी जिंदगीकी लंपटता और विषयासक्ति सही साबित हो गई।

मेरे इन साथी लेखकोंके जीवन-संबंधी विचार ये थे : सामान्य जीवन विकसित होता रहता है और इस विकासमें हम विचार-प्रधान आदमी खास हिस्सा लेते हैं; फिर विचार-प्रधान आदमियोंमें भी हमारा—कलाकारों और कवियोंका—सबसे अधिक प्रभाव होता है। हमारा धंधा मनुष्य-जातिको शिक्षा देना है। और कहीं यह सीधासादा सवाल किसीके दिलमें न उठ खड़ा हो कि मैं जानता क्या हूँ और शिक्षा किस बातकी दे सकता हूँ, इसलिए इस सिद्धांतमें यह कहा गया था कि इसका जानना जरूरी नहीं है; कलाकार और कवि अप्रकट रूपमें ही शिक्षा देते हैं। मैं एक सराहनीय कलाकार और कवि समझा गया था, इसलिए मेरे लिए इस सिद्धांत को मान लेना स्वाभाविक था। मैं, कलाकार और कवि, लिखता तथा शिक्षा देता था, परंतु स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या लिख रहा हूँ और क्या शिक्षा दे रहा हूँ। और इसके लिए मुझे धन मिलता था, मुझे अच्छा भोजन, मकान, स्त्री और समाज सब कुछ मिला हुआ था; मेरा यश भी फैला था जिससे यह मालूम पड़ता था कि जो कुछ मैं सिखा रहा हूँ वह बहुत अच्छी चीज़ है।

*कुछ स्मृति-दोष मालूम होता है। वह सत्ताईस वर्षके थे। —सं०

कविताके और जीवनके विकास के संबंधमें इस तरहका विश्वास एक प्रकारसे धर्म था और मैं उसका पुरोहित। उसका पुरोहित होना बड़ा सुखद और लाभदायक था। मैं बहुत दिनोंतक इस धर्मको, उसके औचित्यमें किमी तरहका संदेह किये बिना, मानता रहा। किंतु इस जीवन के दूसरे और विशेष गीतिमें तीसरे सालमें मैं इस धर्मकी निभ्राततापर संदेह करने लगा और मैंने उसकी जांच करनी भी शुरू कर दी। इस संदेह का पहला कारण यह था कि मैंने देखा कि इस धर्म के सब पुरोहित आपसमें एक गय नहीं रखते। कुछ कहते थे : हम सबसे अच्छे और उपयोगी शिक्षक हैं : हम वही शिक्षा देते हैं जिसकी आवश्यकता है। दूसरे गलत शिक्षा देते हैं। दूसरे कहते : नहीं असली शिक्षक हम हैं; तुम गलत शिक्षा देते हो। और वे एक-दूसरे से लड़ते-भगड़ते, गाली-गलौज करते और धोखा देते थे। हममेंसे बहुतेरे ऐसे भी थे जिनको इसकी परवा न थी कि कौन सही है और गलत; वे सिर्फ हमारी इन कारवाइयों के जरिये अपना मतलब साधने में लगे हुए थे। इन सब बातोंकी वजह से मैं इस धर्मकी सच्चाईमें संदेह करनेको विवश हो गया।

इसके अतिरिक्त लेखकोंके धर्म-मतमें इस तरह संदेह करना शुरू करनेके बाद मैं उसके पुरोहितोंपर भी ज्यादा बारीक नज़र रखने लगा और मुझे पक्का विश्वास हो गया कि इस धर्मके करीब-करीब सब पुरोहित, लेखकगण असदाचारी और अधिकतर दुश्चरित्र एवं अयोग्य हैं तथा उन लोगोंसे भी नीचे हैं जिनसे मैं अपने पहलेके भ्रष्ट और सैनिक जीवनमें मिला था। वे आत्म-विश्वासी एवं आत्म-संतुष्ट थे और ऐसे वे ही आदमी हो सकते हैं जो बिल्कुल पवित्र हों या फिर जो जानते भी न हों कि पवित्रता किस चिड़ियाका नाम है। इन आदमियोंसे मुझे घृणा होने लगी; मुझे स्वयं अपनेसे घृणा हो गई और मैंने अनुभव किया कि यह मत सिर्फ धोखा-धड़ीके सिवा कुछ नहीं है।

लेकिन ताज्जुब है कि यद्यपि मैं इस धोखेबाज़ीको समझ और छोड़-

कुंका था, पर मैंने उस पदमर्यादाका त्याग नहीं किया जो इन आदमियों ने मुझे दे रखी थी—यानी कलाकार, कवि और शिक्षककी मर्यादा। मैं बड़े भोलैपनके साथ कल्पना करता था कि मैं कवि और कलाकार हूँ और मैं हर एकको शिक्षा दे सकता हूँ, यद्यपि मैं स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या शिक्षा दे रहा हूँ। और मैं तदनुसार कार्य करता रहा।

इन आदमियोंके संसर्ग से मैंने एक नई बुराई सीखी मेरे अंदर यह असाधारण धमंड और मूर्खतापूर्ण विश्वास पैदा हुआ कि आदमियोंको शिक्षा देना ही मेरा धंधा है; चाहे मुझे स्वयं मालूम न हो कि मैं क्या शिक्षा दे रहा हूँ।

उस ज़मानेकी और अपनी तथा उन आदमियोंकी (जिनका समान आज भी हज़ारों हैं) मनोदशा याद करना अत्यंत दुःखदायक, ज्यानक और अनर्गल है और इससे मनमें ठीक वही भावना पैदा होती है जो आदमीको पागलखानेमें महरूस होती है।

उस समय हम सबका विश्वास था कि हमें जितनी तेज़ीके साथ और जितना ज्यादा मुमकिन हो बोलना, लिखना और छुपाना चाहिए और यह सब मनुष्यके हितके लिए ज़रूरी है। हममेंसे हज़ारोंने एक-दूसरेका खडन और परस्पर निंदा करते हुए लिखा और छुपवाया—दूसरोंकी शिक्षाके लिए। और यह नहीं बताया कि हम कुछ नहीं जानते या जीवनके इस बिल्कुल सीधे-सादे प्रश्न पर कि अच्छाई क्या है और बुराई क्या है, हम नहीं जानते कि हम क्या जवाब दें। हम एक-दूसरेकी मुनते न थे और सब एक ही वक्त बोलते थे; कभी इस खयालसे दूसरेका समर्थन और प्रशंसा करते थे कि वह भी मेरा समर्थन और प्रशंसा करेगा। और कभी एक दूसरेसे नाराज़ हो उठते थे, जैसा कि पागलखानेमें हुआ करता है।

हज़ारों-लाखों मज़दूर दिन-रात अपनी पूरी ताकतसे काम करते और उन करोड़ों अक्षरोंको टाइपमें इकट्ठा करते और छापते, जिन्हें डाकखाना सारे रूममें फैला देता था। और हम सब शिक्षा देते ही जाते थे, हमें

शिक्षा देनेका काफी वक्तक नहीं मिलता था, हमें सदा इस बातपर खोज रहती थी कि हमारी तरफ काफी ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

यह बड़े ही ताज्जुबकी बात थी, पर इसका समझना मुश्किल न था। हमारी आंतरिक इच्छा तो यह थी कि अधिक-से-अधिक धन और प्रशंसा प्राप्त हो। इस मनलबको हल करने के लिए हम बस किताबों और अखबार लिख सकते थे। हम यही करते थे। फिजूलका काम करने और यह आश्वासन रखनेके लिए कि हम बड़े महत्वपूर्ण लोग हैं, हमें अपने कामोंको उचित टहरानेवाले एक मतकी आवश्यकता थी। इसलिए हम लोगोंके बीच यह मत चल पड़ा: 'जितनी बातोंका अस्तित्व है वे सब ठीक हैं। जो कुछ है उस सबका विकास होना है। यह विकास संस्कृतिके जरिये होता है और संस्कृतिकी माप किताबों और अखबारोंके प्रचारसे की जाती है। और चूंकि हमको किताबों और अखबार लिखनेसे धन और सम्मान मिलता है, इसलिए हम सब आदमियोंसे अच्छे और उपयोगी हैं।' अगर सब लोग एक रायके होते तो यह मत ठीक माना जा सकता था, पर हममेंसे हर एक आदमी जो विचार प्रकट करता, दूसरा सदा उसके बिल्कुल विरोधी विचार प्रकट करता था, इसलिए हमारे मनमें चिंता पैदा होनी चाहिए थी। पर हमने इसकी उपेक्षा की। लोग हमको धन देते थे और अपने पक्षके लोग हमारी तारीफ करते थे; इसलिए हममेंसे हर एक अपनेको ठीक समझता था।

आज मुझे साफ-साफ मालूम पड़ता है कि यह सब पागलखाने—जैसी बातें थीं; पर उस वक्त मुझे मिर्र इसका धुंधला आभास था और जैसा कि सभी पागलोंका कायदा है, मैं अपने सिवा और सबको पागल कहता था।

इस तरहके पागलपनमें मैंने छः साल और बिता दिये—यानी तबतक जबतक कि मेरी शादी नहीं होगई । इस अवधिमें मैं विदेश गया । यूरुपमें मेरा जैसा जीवन रहा उससे और प्रमुख यूरोपियन विद्वानोंसे मेरा जो परिचय हुआ उससे मेरा यह विश्वास और दृढ़ हो गया कि पूर्णताके लिए कोशिश करनी चाहिये: क्योंकि मैंने देखा कि उनका भी ऐसा ही विश्वास था । इस विश्वासने मेरे अंदर भी वही रूप ग्रहण किया जो हमारे ज़मानेके अधिकतर शिक्षित लोगोंके हृदयमें करता है । इसे 'प्रगति'के नामसे प्रकट किया जाता है । तभी मुझे खयाल आया कि इस शब्दके भी कुछ मानी हैं । दूसरे जीवित आदमियोंकी तरह मुझे भी यह सवाल परेशान किये हुए था कि मेरे लिए किस तरह ज़िंदगी बसर करना सबसे अच्छा होगा ? पर उस समय तक मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाया था कि इस सवालपर मेरा जवाब, 'प्रगतिके अनुकूल जीवन बिताओ', नावपर सवार उस आदमीके जवाबकी तरह है जो तूफानके बीच पड़ा हुआ है और 'किधर नाव खेना है' का जवाब यह कहकर देता है कि 'हम कहीं बहे जा रहे हैं ।'

उस वक्त यह बात मेरे ध्यानमें नहीं आई थी । कभी-कभी, बुद्धिसे समझकर नहीं, बल्कि अंतःप्रेरणासे मैं इस मिथ्या विश्वासके प्रति विद्रोह करता था, जो हमारे ज़मानेमें सर्वप्रचलित था और जिसके ज़रिये आदमी ज़िंदगीके मानी समझनेमें अपना अज्ञान खुद अपनेसे ही छिपाता है ।...उदाहरणार्थ जब मैं पेरिसमें ठहरा हुआ था तब एक आदमीको फांसी दी जाती देखकर मुझे प्रगतिमें विश्वासकी अस्थिरता का पता चला, जिसमें मेरा मिथ्या-विश्वास था । जब मैंने सिगको धड़से

जुदा होते देखा और शवको बक्समें भरा जाते देखा तब मैंने न सिर्फ अपने मस्तिष्कसे, बल्कि अपनी संपूर्ण अंतरात्मा से यह महसूस किया कि हमारी वर्तमान प्रगतिका औचित्य सिद्ध करनेवाला कोई मत इस कार्यको उचित नहीं साबित कर सकता । यद्यपि दुनियाकी शुरुआत-से हर एक आदमीने चाहे किसी उसूलपर इसे झरूरी बताया है, पर मैं जानता हूँ कि यह गौरजरूरी और बुरा काम है । मैंने अनुभव किया है कि भला क्या है, इसका फैसला यह देखकर नहीं किया जा सकता कि लोग क्या कहते और करते हैं; प्रगति भी इसका निर्णय नहीं कर सकती—इसका फैसला तो मेरा हृदय और 'मैं' ही कर सकता हूँ । प्रगतिमें मूढ़ विश्वास जीवनका पथप्रदर्शन कर सकनेके लिए नाकाफी है, यह मैंने दूसरी चार अपने भाईकी मौतपर अनुभव किया । वह बुद्धिमान थे, भले थे और गंभीर स्वभावके थे । फिर भी जवानीमें ही बीमार पड़े, एक साल-से अधिक समयतक कष्ट भोगते रहे और त्रैर यह समझे हुए कि वह किसलिए जिये और उनको किसलिए मरना पड़ रहा है बड़ी वेदनाके साथ उनकी मौत होगई । इन सवालोंने जवाब मुझको या उनको, जब वह धीरे-धीरे कष्टपूर्वक मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहे थे, किसी उसूल या मतसे नहीं हासिल हो सका । पर इस तरहके संदेह तो मेरे मनमें कभी-कभी ही उठते थे: वास्तवमें मैं प्रगतिका समर्थक बनकर ही जीवन व्यतीत करता रहा । 'मत्रका विकास होता है और उसके साथ मेरा भी विकास होता है; मत्रके साथ मेरा विकास क्यों होता है, इसका पता भी कभी लग जायगा ।' उस समय इस तरहका विश्वास मुझे बना लेना चाहिये था ।

विदेशसे लौटनेपर मैं देहातमें बस गया । यहां मुझे किसानोंके स्कूलोंमें काम करनेका मौका मिला । पढ़ काम खास तौरपर मेरी रुचि-के अनुकूल था । इसमें मुझे उस झूठका सामना नहीं करना पड़ता था जो साहित्यिक साधनोंसे लोगोंको शिक्षा देते समय मेरे निकट स्पष्ट हो जाता था और मुझे घूरता था । यह ठीक है कि यहां भी मैंने 'प्रगति'

के नामपर काम किया; पर मैं अब स्वयं 'प्रगति'को संदेहकी दृष्टिसे देखता था। मैंने अपनेसे कहा—'कुछ मामलोंमें प्रगति गलत ढंगसे हुई है। इन आदिम सीधे-सादे किसानोंके बच्चोंके साथ तो पूरी आजादी से ही बर्ताव करना चाहिए और उनको खुद चुनने देना चाहिए कि वे प्रगतिका कौनसा गन्ता पसंद करते हैं।' वास्तवमें मैं एक ही असाध्य समस्याके चारों तरफ लगातार चक्कर काट रहा था: वह समस्या यह थी कि 'क्या शिक्षा दी जाय, यह जाने बिना, किस तरह शिक्षा दी जा सकती है। ऊँचे दर्जेकी साहित्यिक सेवाके समय मैंने यह महसूस कर लिया था कि कोई तबतक शिक्षा नहीं दे सकता जबतक यह जान न ले कि क्या शिक्षा देनी है। मैंने देखा था कि सब लोग जुदा-जुदा ढंगसे शिक्षा देते हैं और आपसमें लड़कर सिर्फ एक दूसरेसे अपना अज्ञान छिपानेमें सफल होते हैं। लेकिन यहाँ किसानोंके बच्चोंके बीच काम करते हुए मैंने यह कठिनाई दूर करनेके लिए सोचा कि मैं उन्हें पूरी आजादी दे दूँगा कि वे जो चाहें सीखें। अब मुझे यह याद करके आनंद आता है कि मैं अपनी शिक्षा देनेकी इच्छा तृप्त करनेके प्रयत्नमें क्या-क्या करता था। अपनी अंतरात्तामें तो मैं अच्छी तरह जानता था कि मैं कोई उपयोगी शिक्षा नहीं दे सकता; क्योंकि मैं जानता ही नहीं कि क्या उपयोगी है। साल भरतक स्कूलका काम करनेके बाद मैं दूसरी बार इस बातकी खोज करने विदेश गया कि स्वयं कुछ न जानते हुए भी मैं दूसरोंको कैसे शिक्षा दे सकता हूँ।

और मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मैंने विदेश जाकर यह सीख लिया और किसानोंकी मुक्तिके माल (१८६१) में मैं इस अर्जित ज्ञानके साथ रूस लौटा। लौटते ही मैं पंच (किसानों और जमींदारोंके बीच शांति बनाये रखने के लिए) बना दिया गया। स्कूलमें मैंने अशिक्षित किसानोंको सिखाना-पढ़ाना शुरू किया और शिक्षित वर्गोंको एक पत्रिका निकालकर उसके द्वारा शिक्षा देने लगा। सब कुछ ठीक चलता हुआ मालूम पड़ता था, पर मैं महसूस कर रहा था कि मेरी मानसिक दशा

अच्छी नहीं है और इस तरहसे ज्यादा दिन चल नहीं सकता । उस समय यदि जीवनका एक दूसरा पहलू न शुरू हो जाता, जिसका अनुभव मैं अभीतक कर नहीं पाया था और जिससे सुखी हो जानेकी आशा थी, अर्थात् यदि मेरा विवाह न हो जाता तो, वैसी ही भयंकर निराशा होती जैसी पंद्रह साल बाद हुई ।

एक सालतक मैंने अपनेको पचायत, स्कूल और पत्रिकाके काम-में इतना व्यस्त रक्खा कि मैं—विशेष रीतिसे अपनी मानसिक व्यग्रताके कारण, बिल्कुल पस्त हो गया और बीमार पड़ गया । पचकी हैसियतसे मुझे ज़बदंस्त कशमकश करनी पड़ती थी, स्कूलोंमें भी मेरे कामका अस्पष्ट परिणाम निकल रहा था और पत्रिकामें मेरी अपनी उलट-फेरसे घृणा होती थी (क्योंकि उसमें सिर्फ एक ही बात होती थी—हरएक को शिक्षा देनेकी इच्छा और यह दिखानेकी कोशिश कि मुझे इसका ज्ञान नहीं कि क्या शिक्षा देनी चाहिए) । मेरी बीमारी शारीरिक होनेकी अपेक्षा मानसिक अधिक थी । मैंने सब काम छोड़ दिये और साफ-ताजी हवामें सांस लेने, कूमीज़* पीने और सिर्फ जानवरों जैसी जिंदगी बितानेके खयालसे बरशाकीके मैदानोंमें चला गया ।

वहासे लौटनेके बाद मैंने शादी कर ली । सुखी कौटुंबिक जीवनने मुझे जीवनके सामान्य अर्थकी न्योजसे विमुख कर दिया । उस वक्त मेरी सारी जिंदगी अपने कुटुंब, स्त्री और बच्चोंमें केंद्रित थी, इसीलिए मुझे अपनी जाविकाके साधन बढ़ानेकी फिक्र भी लग गयी । अपनेको पूर्ण बनानेकी कोशिश करनेके बजाय मैं सामान्य पूर्णता यानी प्रगतिको अपना चुका था, परंतु अब उसकी जगह मैं अपने और अपने कुटुंबके लिए यथासंभव अच्छी-से-अच्छी सुविधाएँ जुटानेकी कोशिशमें लग गया ।

इस तरह पंद्रह साल और बीते ।

* घोड़ीके दूधसे बनाया हुआ एक तरहका हल्का नशा पैदा करनेवाला पेय ।

यद्यपि अब मैं लेखन-कार्य को कोई महत्व नहीं देता था, फिर भी मैं उन पंद्रह सालोंमें यही कार्य करता रहा। मैं पुस्तक लेखक होनेका प्रलोभन—आर्थिक पुरस्कार पाने और निकम्मी रचनाओंके लिए यश प्राप्त करनेका प्रलोभन, अनुभव कर चुका था, और अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने तथा सामान्य जीवनके अर्थके सम्बंधमें अपनी अंतरात्माके अंदर उठनेवाले प्रश्नोंको दबा देनेके लिए मैंने लिखना जारी रक्खा।

मेरे लिए जो एकमात्र सच्चाई रह गई थी, वही मैं दूसरोंको अपनी रचनाओंके ज़रिये सिखाने लगा—यानी आदमीको इस तरह रहना चाहिए कि वह अपने कुटुंबके लिए अधिकसे अधिक मुम-सुविधाका प्रबंध कर सके।

इस तरह ज़िंदगीकी गाड़ी चलती रही; लेकिन पाच साल पहले एक अजीब अनुभव होने लगा। शुरुमें किसी क्षण परेशानी और उलझनका अनुभव होता था; ऐमा मालूम होता था कि ज़िंदगीकी रफ्तार बंद हो गई है, उसमें कोई रुकावट पैदा हो गई है और मैं नहीं जानता कि किस तरह जीना चाहिए और क्या करना चाहिए। मैं अपने को खोया हुआ और खिन्न अनुभव करता था। लेकिन ये क्षण बीत जाते थे और मेरी ज़िंदगी पहले-जैसी बीतती रही। कुछ दिनों बाद इस तरहकी उलझन बार-बार हाने लगी और उसकी मूरत भी एक ही होती थी। यह उलझन कुछ इस सवालकी मूरतमें सामने आती थी : यह जीवन किसलिए है ? यह कहां ले जाता है ?

शुरू-शुरूमें तो मुझे ऐसा लगता था कि ये बेमानी और बेसिर-पैर-के सवाल हैं। मैंने सोचा कि यह सब अच्छी तरह जाना हुआ है और अगर कभी मैं इसे हल करना चाहूंगा तो मुझे कुछ ज्यादा मेहनत न करनी पड़ेगी; फिलहाल मेरे पास इसके लिए वक्त नहीं है, पर जब मैं चाहूंगा, इसका जवाब ढूंढ लूंगा। पर ये सवाल बार-बार दिमागमें उठने लगे और जवाब देनेके लिए ज्यादा जोर देने लगे। एक ही

जगह गिरती हुई स्याहीकी तरह उन्होंने एक बड़ा काला निशान बना दिया ।

इसका नतीजा वही हुआ जो घातक अंदरूनी बीमारीसे पीड़ित हर एक आदमीका होता है । पहले तबीयतकी गिरावटके हलके लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिसकी तरफ अस्वस्थ आदमी ध्यान नहीं देता; फिर ये लक्षण जल्द-जल्द, बार-बार, दिखाई पड़ने लगते हैं और फिर लगातार पीड़ाकी अवधिमें बदल जाते हैं । तकलीफ बढ़ती जाती है और इसके पहले कि बीमार आदमी अपने इर्द-गिर्द नज़र डाले, वह चीज जिसे उसने महज़ तबीयतका भारीपन समझ रक्खा था, दुनियामें उसके लिए सब चीज़ोंसे ज्यादा महत्वपूर्ण बन चुकी होती है—वह मौत है ।

मेरे साथभी ऐसा ही हुआ । मैंने समझ लिया कि यह कोई आकस्मिक अस्वस्थता नहीं है, बल्कि कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात है । और अगर ये सवाल इसी तरह बार-बार सामने आते रहे तो इसका जवाब देना ही पड़ेगा । मैंने उनका जवाब देनेकी कोशिश की । ये सवाल अत्यन्त मूर्खतापूर्ण, सीधे और बचकाने मालूम पड़ते थे, लेकिन ज्यों ही मैंने उन्हें हल करनेकी कोशिश की, त्यों ही मुझे यकीन हो गया कि (१) वे बचकाने और मूर्खतापूर्ण सवाल नहीं हैं, बल्कि ज़िंदगीके सवालोंमें सबसे महत्वपूर्ण और गंभीर हैं और (२) मैं चाहे जितनी कोशिश करूँ उनको हल करनेमें असमर्थ हूँ । अपनी समाराकी जर्मांदारी संभालने, अपने बेटेकी शिक्षाका प्रबंध करने और किताब लिखनेके पहले मेरे लिए यह जानना ज़रूरी हो गया कि मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ । जबतक मैं क्यों जान न लेता तब तक कोई काम नहीं कर पाता था, यहांतक कि ज़िंदगी नामुमकिन मालूम पड़ती थी । उस वक्त मैं जर्मांदारीके इंतज़ाममें ज्यादा फंसा हुआ था, लेकिन उसकी भ्रंशटोंके बीचभी एकाएक यह सवाल मेरे दिमागमें पैदा हो जाता कि—

‘तुम्हारे पास समारा सरकार में ६००० ‘देसियातिना’ * ज़मीन है, ३००

* एक देसियातिना लगभग पौने-तीन एकड़के बराबर होता है ।

घोड़े हैं पर इसके बाद ?'...मैं परेशान हो जाता और समझमें नहीं आता कि क्या सोचूं ? इसी तरह अपने बच्चोंकी शिक्षाकी योजनाओं पर विचार करते-करते मैं अपनेसे पूछने लगता—'यह किस लिए ?' जब इस बात पर विचार कर रहा होता कि किसानोंको समृद्ध कैसे बनाया जा सकता है, मैं एकाएक अपनेसे सवाल कर बैठता—'पर इससे मुझे क्या मिल सकेगा ?' अथवा जब मैं अपनी पुस्तकोंसे मिलने वाली प्रसिद्धि पर विचार करता होता, तो अपनेसे पूछता—'बहुत अच्छा, तुम गोगल*, पुश्किन*, शेक्सपीयर†, या मौलियर‡, बल्कि दुनियाके सब लेखकोंसे ज्यादा प्रसिद्ध होंगे—पर इससे क्या ?' मुझे इसका कुछ भी जवाब नहीं सूझता था । उधर सवाल ठहरनेको तैयार न थ, वे तुरंत जवाब चाहते थे और अगर मैं उनका जवाब न देता तो मेरा जीना नामुमकिन था । पर क्या करता, कुछ जवाब ही न था ।

मैंने अनुभव किया कि जिस चीज़ पर मैं इतने दिनोंसे खड़ा था वह गिर गयी है और मेरे पांवके नीचे कोई आधार नहीं है; जिस चीज़के सहारे मैं इतने दिनोंतक जी रहा था वह खत्म हो गयी है और ऐसी कोई चीज़ नहीं रह गयी है, जिसको लेकर मैं जी सकूं ।

: ४ :

मेरे जीवनकी गति रुक गई । मैं सांस लेता, खाता-पीता और सोता था, इन कामोंको करनेके लिए मैं मजबूर था; लेकिन जीवन नहीं रह गया था; क्योंकि ऐसी कामनायें नहीं रह गई थीं जिन्हें पूरा करना मैं उचित समझता होऊँ । अगर किसी चीज़की कामना होती तो भी मैं पहलेसे ही समझ जाता था कि चाहे मैं उसे पूरा करूं या न करूं, इससे कुछ होने-जानेवाला नहीं है । इस समय अगर कोई परी मेरे पास

* प्रसिद्ध रूसी लेखक । † प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार । ‡ मशहूर फ्रांसीसी हास्य नाट्य लेखक ।

आकर वरदान मांगनेको कहती तो मुझे समझमें न आता कि उससे क्या मांगना चाहिए। यदि कभी-कभी नशेकी घड़ियोंमें मैं कोई ऐसी चीज़ महसूस करता था जो इच्छा तो नहीं, हां, पहलेकी इच्छाओंकी वजहसे पड़ी आदत होती थी, तो चित्त शांत और स्वस्थ होनेपर मैं समझ जाता था कि यह धोखा है और दरअसल इच्छा करने लायक कोई चीज़ नहीं है। मैं सत्यको जाननेकी इच्छा भी नहीं कर पाता था; क्योंकि मैं कल्पना कर चुका था कि सत्य क्या है। सत्य यह था कि जीवन निरर्थक है। मैं एक प्रकारसे तबतक ज़िंदगी बसर करता चला गया था जबतक ढालके ऊपर नहीं पहुंच गया और साफ़-साफ़ यह देख नहीं लिया कि मेरे आगे विनाशके सिवा कुछ नहीं है। टहरना या पीछे लौट जाना नामुमकिन था, पर अपनी आंखोंको बंद कर लेना या इस बातको न देखना भी नामुमकिन था कि कष्ट और मौत—पूर्ण विनाशके सिवा अब मेरे आगे कुछ नहीं है।

हालत यह हो गई थी कि मैं एक स्वस्थ और भाग्यवान आदमी अनुभव करता था कि अब मैं जी नहीं सकता; कोई अप्रतिहत शक्ति येनकेन जीवनसे छुटकारा पानेके लिए मुझे धकेल रही है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं अपनी हत्या करना चाहता था। जो शक्ति मुझे जीवनसे दूर धकेल रही थी, वह किसी कामनासे कहीं अधिक बलवान, पूर्ण और विस्तृत थी। यह उस शक्तिसे मिलती-जुलती थी, जो पहले मुझे एक अलग दिशामें, जीनेके लिए प्रेरित करती थी। मेरी सारी शक्ति मुझे जीवनसे दूर लिए जा रही थी। जैसे पहले अपना जीवन सुभारने और विकसित करनेके विचार स्वभावतः मेरे मनमें आते थे वैसे ही आत्म-विनाशका विचारभी मेरे मनमें उदित हुआ। और यह विचार कुछ ऐसा लुभावना था कि मुझे अपने साथ ज़बर्दस्ती करनी पड़ी कि कहीं मैं जल्दबाज़ीमें कुछ कर न बैठूं। मैं जल्दबाज़ी नहीं करना चाहता था; क्योंकि मैं जालसे निकलनेकी पूरी कोशिश कर लेना चाहता था। 'अगर मैं मामलोंको सुलझा नहीं सकता तो भी

इसके लिए सदा समय रहेगा।' उसी समय इसे भाग्यकी अनुकूलता कहनी चाहिये, मैंने अपने कमरेकी रस्ती पाससे हटा दी। यह रस्ती परदा डाल कर, कमरेका एक हिस्सा अलग करनेके लिए टंगी थी, जिसके पीछे मैं रोज़ रातमें अपने कपड़े उतारता था। मुझे डर पैदा हो गया था कि कहीं मैं इस रस्तीसे फांसी न लगा लूं। मैंने बंदूक लेकर बाहर शिकारके लिए जाना भी बंद कर दिया कि कहीं आसानीसे मैं अपनी जीवन-लीला समाप्त न कर बैठूं। मैं खुद नहीं जानता था कि मैं चाहता क्या हूं; मैं जीवनसे भय खाता था, उससे भागना चाहता था; फिर भी उससे कुछ न कुछ आशा मुझे लगी हुई थी।

और मेरी यह हालत उस समय हो रही थी जब मैं चारो ओर वैभवसे घिरा हुआ था। अभी मेरी उम्र ५०की भी नहीं थी; मेरी पत्नी बड़ी नेक थी; वह मुझे प्यार करती थी और मैं उसे प्यार करता था। मेरे बच्चे अच्छे थे; मेरे पास एक बड़ी ज़मींदारी थी जो मेरे कुछ ज्यादा मेहनत किये बगैर बढ़ती जा रही थी। मेरे रिश्तेदार और परिचित लोग मेरा जितना आदर उस समय करते थे उतना पहले कभी नहीं करते थे। दूसरे लोग भी मेरी प्रशंसा करते थे और अधिक आत्म-वंचनाके बिना मैं सोच सकता था कि मेरा नाम प्रसिद्ध हो गया है। और पागल या मानसिक दृष्टिसे अस्वस्थ होना तो दूर रहा, इस समय मेरे शरीर और मस्तिष्क में इतनी शक्ति थी जितनी मेरे दर्जेके आदमियोंमें शायद ही कभी पाई जाती है। शरीरकी दृष्टिसे, मैं किसानों के बराबर कटाईका काम कर सकता था और मानसिक दृष्टिसे मैं लगातार ८ से १० घंटे तक, बिना थकावट या बुरे अमरके, काममें लगा रह सकता था। ऐसी हालतमें भी मुझे यह मालूम पड़ता था कि मैं जी नहीं सकूंगा और मौतके डरसे मैं अपने साथ चालाकिया चलाता था कि कहीं खुद अपनी जान न ले बैठूं।

मेरी मानसिक स्थिति मेरे सामने कुछ इस तरह आती थी; मेरी जिंदगी एक मूर्खतापूर्ण और ईर्ष्यासे भरी हुई दिखती है जो किसीने

मेरे साथ की है। यद्यपि मैं अपनेको पैदा करनेवाले इस 'किसी'को मानता न था फिर भी इस तरहका विचार स्वभावतः मेरे मनमें पैदा होता था कि किसीने इस दुनियामें लाकर मेरे साथ बुरा और भद्दा मज़ाक किया है।

बग़ैर किसी तरहकी कोशिशके मेरे अंदर यह ख्याल पैदा हुआ कि कहीं-न-कहीं कोई ऐसा ज़रूर है जो यह देखकर हंस रहा है कि मैं तीस या चालीस सालों तक किस तरह रहता रहा हूँ; किस तरह मैं शरीर और मांस्तक से प्रौढ़ होता, मीथ्वता एवं विकसित होता रहा हूँ—और प्रौढ़ मानसिक शक्तियोंके साथ जीवनकी उस चोटीपर पहुँचकर, जहाँसे सब चीज़ें मेरे सामने पड़ी दिखाई देती हैं, मैं महामूर्ख की तरह खड़ा होता हूँ और साफ़ देख रहा हूँ कि जीवनमें कुछ नहीं है, न कुछ रहा है और न कभी कुछ रहेगा। और वह हंस रहा है।

लेकिन मुझ पर हसनेवाला 'वह कोई' हो या न हो, मेरी हालत तो खराब ही थी। मैं अपने किसी कामका, या संपूर्ण जीवनका कोई उचित अर्थ ढूँढ़ नहीं पाता था। मुझे इस पर ताज्जुब हुआ कि मैंने शुरूसे इस बातकी जानकारीसे अपनेको अलग रखा—यह बहुत दिनोंसे सबको मालूम ही है कि प्रियजनोंकी अथवा मेरी आज या कल बीमारी और मौत आयगी ही (वे दोनों आ ही चुकी थीं); बदबू और कीड़ोके अलावा कुछ बाकी न रह जायगा। शीघ्र या कुछ देरसे मेरी बातें लोग भूल जायंगे और मेरा अस्तित्व न रह जायगा। तब चेष्टा करनेसे लाभ क्या?...मनुष्य को यह बात कैसे नहीं दिखाई पड़ती है? कैसे वह ज़िंदगी बसर करता जाता है? यह अचंभे की बात है! कोई तभी तक जी सकता है जबतक वह जीवनसे मतवाला हो; ज्यों ही वह शांत और संयमी हुआ उसका यह न देखना नामुमकिन हो जाता है। सब कुछ धोखा और मूर्खतापूर्ण प्रवंचना है! बात ठीक ऐसी ही है, इसमें हंसी या मनोरंजनकी कोई बात नहीं है; जीवन निर्दय और मूर्खतापूर्ण है।

पूरखकी एक बड़ी पुरानी कहानी है । एक मुसाफिर रास्तेसे कहीं जा रहा था । एक मैदानमें उसकी किसी क्रुद्ध जंगली जानवरसे भेट हो गई । वह मुसाफिर जानवरसे भागकर पासके सूखे कुएँमें घुस गया । पर जब उसने नीचे नज़र डाली तो देखता क्या है कि एक अजगर उसे निगलनेके लिए अपना मुँह खोले हुए है । अब वह अभागा आदमी न तो जानवरके डरसे कुएँसे बाहर ही आनेकी हिम्मत करता है और न अजगरके डरसे कुएँके अंदर ही कूदनेका साहस करता है । बचनेके लिए वह कुएँकी एक दरारमें निकली हुई टहनी पकड़ कर लटक जाता है । उसके हाथ शिथिल होते जा रहे हैं और वह महसूस करता है कि जल्द ही उसे अपनेको ऊपर या नीचे मौतके हाथमें सौंपना पड़ेगा । फिर भी वह लटका ही रहता है । इतनेमें ही वह देखता क्या है कि दो चूहे एक सफेद और एक काला—बार-बार उस टहनीकी जड़के इर्द-गिर्द घूमते हुए उसे काट रहे हैं । जल्द ही टहनी टूट जायगी और उसे अजगरके मुँहमें समा जाना होगा । मुसाफिर यह सब देखता है और जान लेता है कि उसकी मृत्यु अवश्यभावी है । इसी बीच लटके-ही-लटके वह अपने चारों तरफ दृष्टि डालता है और देखता क्या है कि टहनीकी पत्तियों पर शहदकी कुछ बूँदें पड़ी हुई हैं; वह भुक्कर ज़बानसे उन्हें चाट लेता है । यही हालत मेरी है । मैं भी यह जानते हुए कि मौतका अज़दहा टुकड़े-टुकड़े कर देनेके लिए मेरी बाट जोह रहा है, मैं जीवनकी टहनी पकड़े हुए हूँ और समझमें नहीं आता कि क्यों ऐसी यातना भोग रहा हूँ । मैंने शहद चाटनेकी कोशिश की जिससे पहले मुझे कुछ शांति मिली, पर अब शहद चाटनेसे सुख नहीं मिलता था, और दिन और रात-रूपी सफेद और काले चूहे ज़िदगीकी उस टहनीको बराबर काट रहे थे, जिसे मैं पकड़े हुए था । मैंने साफ़-साफ़ अज़दहेको देख लिया था और अब शहद मीठा नहीं लगता था । मैं सिर्फ़ अज़दहे और चूहोंको देख रहा था और उस ओरसे अपनी दृष्टि हटा नहीं पाता था । यह कोई कहानी नहीं, बल्कि एक

ऐसी वास्तविक सच्चाई है, जिसका जवाब नहीं और जो सबकी समझमें आ सकती है ।

जीवनके आनंदकी वंचनाएं, जो मेरे अज्ञातहेके भयको दबा रखती थीं, अब मुझे धोन्वा देनेमें असमर्थ थीं । चाहे मुझसे कितनी ही बार कहा जाय कि—‘तुम जीवन का अर्थ नहीं समझ सकते, इसलिए उसके बारेमें कुछ मत सोचो और जिओ,’ पर मैं अब ऐसा नहीं कर सकता; मैंने काफी अरसे तक यही किया है । अब मैं दिन-रातको चक्कर काटते और मेरी मौतको नजदीक लाते देख रहा हूँ और इससे आख मूंदनेमें असमर्थ हूँ । मैं इतनाही देख पाता हूँ; क्योंकि इतना ही सत्य है । बाकी सब भूठ है ।

शहदकी जिन दो बूंदोंने औरोकी अपेक्षा अधिक दिन तक इस निष्ठुर सत्यसे मेरी आंखोंको दूर रक्खा, उनमें—कुटुंब तथा लेखन-कार्य पर मेरी आसक्ति, जिसे मैं कलाके नामसे पुकारता था—अब मिटास नहीं मालूम पड़ती थी ।

‘कुटुंब’... ..मैंने अपने मनमें कहा । पर मेरा कुटुंब—पत्नी और बच्चे—भी तो मनुष्य हैं । उनकी भी वही स्थिति है जो मेरी है; उनको भी या तो भूटके बीच रहना है या फिर भयंकर सत्यको देख लेना है । वे क्यों जियें ? मैं उन्हें क्यों प्यार करूँ ? क्यों उनकी रक्षा करूँ ? और क्यों उनका पालन-पोषण या देख-रेख करूँ ? इसलिए कि वे मेरी तरह निराशाका अनुभव करें या फिर मूर्खतामें पड़े रहें ? जब मैं उन्हें प्यार करता हूँ तब उनसे सत्यको कैसे छिपा सकता हूँ ? और ज्ञानका प्रत्येक पग उनको सत्यके निकट ले जाता है । वह सत्य मौत है ।

‘कला, कविता ?’...सफलता और लोगोकी प्रशंसाके कारण मैंने बहुत दिनोंतक अपने दिलको समझा रक्खा था कि यह ऐसी चीज़ है जिसे आदमी करता रह सकता है—यद्यपि मौत नजदीक आती जा रही थी—वह मौत जो सब चीज़ोंको नष्ट कर देती है, जो मेरी रचना और उसकी यादको भी नष्ट कर देगी । लेकिन जल्द ही मैंने देख लिया

कि यह भी एक धोखा ही है। मुझे स्पष्ट था कि कला जीवनका आभूषण है, जीवनका प्रलोभन है। लेकिन मेरे लिए जीवनका आकर्षण दूर हो चुका था; तब दूसरोंको मैं कैसे आकर्षित करता ? जबतक मैं स्वयं अपना जीवन नहीं बिताता था, बल्कि किसी दूसरे के जीवनकी लहरों पर बह रहा था—जबतक मेरा विश्वास था कि जीवनके कुछ अर्थ हैं, फिर चाहे उसे मैं व्यक्त न कर सकूँ—तबतक कविता और कलामें जीवनकी छाया पाकर मुझे प्रसन्नता होती थी; कलाके दर्पणसे जीवनका दर्शन करना अच्छा लगता था। लेकिन जब मैंने जीवनका अर्थ जाननेकी चेष्टा आरंभकी और मुझे स्वयं अपना जीवन बितानेकी आवश्यकता अनुभव हुई, तब वह दर्पण मेरे लिए अनावश्यक, व्यर्थ, हास्यास्पद और दुखदाई हो गया। दर्पणमें अब मुझे दीखता था कि मेरी स्थिति मूर्खता तथा नैराश्यपूर्ण है, इससे मुझे शांति नहीं मिलती थी। जब मैं अपनी अंतरात्माकी गहराईसे विश्वास करताथा कि जीवनका कुछ अर्थ है तब दृश्य देखनेमें सुहावना लगता था। उस समय जीवनमें अंधकार और प्रकाशके खेलों—हास्य, दुःखांत, करुण, सुंदर और भयंकर—से मेरा मनोरंजन होता था। पर जब मैं जान गया कि जीवन निरर्थक और भयंकर है, तब दर्पणमें अंधकार और प्रकाशके खेल मेरा मनोरंजन न कर सकते थे। जब मैंने अजदहेको देख लिया और यह भी देख लिया कि मैं जिस चीज़का सहारा लिए हुए हूँ उसे चूहे काट रहे हैं तब शहदकी कोई मिठास मुझे कैसे मीठी लग सकती थी ?

बात यहींतक न थी। यदि मैंने केवल इतना ही समझा होता कि जीवनके कोई अर्थ नहीं हैं, तो मैं यह मानकर कि मेरे भाग्यमें यही था, सब कुछ शांतिसे सहन कर लेता। लेकिन मैं अपनेको इतनेसे ही संतुष्ट न कर सका। अगर मैं जंगलमें रहनेवाले उस आदमीकी तरह होता जो जानता है कि इससे निकलनेका कोई रास्ता नहीं है तो मैं जी सकता था; पर मेरी दशा तो उस आदमीकी तरह थी जो जंगलमें रास्ता

भूल जानेके कारण, भयभीत होकर, रास्ता ढूढ़नेके लिए, इधर-उधर दौड़ता फिरता हो। वह जानता है कि हरएक क्रदम उसे ज़्यादा उलझन-में डाल रहा है, फिर भी वह दौड़ना बंद नहीं करता।

निश्चय ही यह भयंकर अवस्था थी। और भयसे बचनेके लिए मैं खुद अपनेको मार डालना चाहता था। आगे मेरा क्या होने वाला है, इसका खौफ भी मैं महसूस करता था और जानता था कि यह भय मेरी मौजूदा हालतसे भी कहीं खराब है। इतने पर भी मैं शांतिपूर्वक अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। चाहे यह तक कितना ही विश्वसनीय लगता रहा हो कि किसी दिन हृदयकी कोई शिरा या अंग कोई चीज़ फट पड़ेगी और सब कुछ समाप्त हो जायगा, पर मैं शांतिके साथ उस दिनकी बाट जोहनेमें असमर्थ था। अंधकारका भय बहुत अधिक था और मैं गलेमें फांसी डालकर या गोली मार कर, मतलब किसी तरह जल्दी-से-जल्दी ज़िंदागीसे छूटना चाहता था। यही भावना बड़े ज़ोरोंसे मुझे आत्महत्याकी ओर ले जा रही थी।

: ५ :

‘लेकिन शायद मैंने कोई चीज़ नज़रअंदाज़ करदी है या समझनेमें मुझसे गलती होगई है ? मैं कई बार अपनेसे कहा करता—‘यह तो नहीं होसकता कि निराशाकी यह हालत मनुष्यके लिए स्वाभाविक हो।’ तब मैंने मानव-संचित ज्ञानकी विविध शाखाओंमें इन समस्याओंका हल ढूढ़नेकी कोशिश की। व्यर्थकी उत्कंठासे या उदासीनताके साथ मैंने यह खोज नहीं की, बल्कि कष्ट उठाकर लगातार रात-दिन उसकी खोजमें लग गया, जैसे कोई डूबता हुआ आदमी अपनी रक्षाके लिए कोशिश करता है। लेकिन मुझे कुछ नहीं मिला।

मैंने सभी विज्ञानोंमें इन समस्याओंका हल खोजा, पर जो कुछ मैं खोजता था उसे पाना तो दूर रहा, उलटे मुझे विश्वास हो गया कि मेरी

तरह जितने लोगोंने भी ज्ञान-मार्गसे जीवनका अर्थ जाननेकी कोशिश की है, उनको कुछ नहीं मिला है। सिर्फ इतना ही नहीं कि उनको कुछ न मिला हो; बल्कि उनको साफ-साफ कहना पड़ा कि जिस चीज़—यानी जीवनकी निरर्थकता—ने मुझको इतना निराश कर रक्खा है, वही एक ऐसी असंदिग्ध बात है जिसे आदमी जान सकता है।

मैंने सभी जगह खोजा; और चूंकि मेरा जीवन ज्ञानकी साधनामें ही बीता था और विद्वानोंकी दुनियासे मेरा संबंध था, इस कारण ज्ञानकी सभी शाखाओंमें वैज्ञानिकों और विद्वानोंतक मेरी पहुंच थी। उन्होंने बड़ी खुशीके साथ अपना सारा ज्ञान, न केवल पुस्तकोंसे, बल्कि वार्त्तालापसे भी, मुझे सुगम कर दिया, जिससे विज्ञान जीवनके प्रश्नपर जो कुछ कहता था, उस सबकी जानकारी मुझे हो गई।

बहुत दिनोंतक मैं यह विश्वास करनेमें असमर्थ रहा कि यह (विज्ञान) जीवनके प्रश्नोंका जो जवाब देता है उसके अलावा दूसरा कोई जवाब नहीं दे सकता। मैंने देखा कि विज्ञान अपनी महत्त्वपूर्ण और गंभीर मुद्राके साथ अपने उन नतीजों या परिणामोंका एलान करता है, जिनका मनुष्यके जीवनके वास्तविक प्रश्नोंसे कोई सम्बंध नहीं, और बहुत दिनोंतक मैं यही समझता रहा कि इसमें कोई ऐसी बात ज़रूर है जिसे मैं नहीं समझ पाया हूं। बहुत दिनोंतक मैं विज्ञानके सामने भीरु बना रहा और मुझे ऐसा मालूम होता रहा कि जवाबों और मेरे सवालोकें बीच एक-रूपतावा अभाव विज्ञानके दोषके कारण नहीं है, बल्कि मेरी नादानीके कारण है। लेकिन मेरे लिए यह कोई खेल या मनोरंजन का विषय नहीं था, बल्कि जीवन और मृत्युका प्रश्न था, और मैं इस निश्चयपर पहुंचा कि मेरे प्रश्न जीवनके वास्तविक प्रश्न हैं, और वे मेरे ज्ञानके आधार हैं और दोष मेरे प्रश्नोंका नहीं, बल्कि विज्ञानका होना चाहिए, यदि वह इन प्रश्नोंका उत्तर देनेका रूपक भरता है।

मेरा प्रश्न—जिसने ५० सालकी उम्र में मुझे आत्म-हत्याके निकट पहुंचा दिया—एक बहुत ही सीधा और सरल प्रश्न था, जो मूर्ख बच्चेसे

लेकर एक बड़े बुद्धिमान प्रौढ़ व्यक्ति तककी आत्मामें उठा करता है। यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका जवाब दिये बगैर कोई जी नहीं सकता, जैसा कि मैंने अनुभवसे समझा है। प्रश्न यह था : 'मैं आज जो कुछ कर रहा हूँ या कल जो कुछ करूँगा उसका नतीजा क्या निकलेगा—मेरे सारे जीवन का क्या नतीजा निकलेगा ?'

दूसरी तरहसे कहा जाय तो इस प्रश्नका यह रूप होगा : "मैं क्यों जिऊँ ? क्यों किसी चीज की इच्छा करूँ ? क्यों कोई काम करूँ ?" इसे यों भी व्यक्त किया जा सकता है : "क्या मेरे जीवनका कोई ऐसा तात्पर्य है कि मेरी नाट जोहती हुई अनिवार्य मृत्यु से भी उसका नाश न होगा ?"

कई तरह से व्यक्त किये जानेवाले इस एक प्रश्नका उत्तर मैंने विज्ञानसे जानना चाहा और मुझे पता चला कि इस प्रश्नके संबन्धमें मनुष्यका सारा ज्ञान दो विरोधी गोलाद्धोंमें बँटा हुआ है, जिनके दोनों सिरोंपर दो ध्रुव हैं—एक निषेधात्मक और दूसरा निश्चयात्मक। लेकिन न तो पहले और न दूसरे ध्रुव पर जीवनके प्रश्नका उत्तर मिलता है।

विज्ञानका एक वर्ग, मालूम पड़ता है, यह प्रश्न स्वीकार नहीं करता, पर अपने स्वतंत्र प्रश्नोंका स्पष्ट और ठीक-ठीक उत्तर देता है। मेरा मतलब प्रयोगात्मक विज्ञानोंसे है, जिनके अंतिम छोरपर गणित है। विज्ञानका एक दूसरा वर्ग इस प्रश्नको स्वीकार करता है, लेकिन इसका उत्तर नहीं देता; यह निगूढ़ विज्ञानोंका वर्ग है और इनके अंतिम छोर पर अध्यात्म विज्ञान है।

शुरू जवानीसे ही निगूढ़ विज्ञानोंमें मेरी दिलचस्पी थी, लेकिन बादमें गणित एवं प्राकृतिक विज्ञानोंकी ओर मेरा आकर्षण हो गया, और जबतक मैंने निश्चय रूपसे अपना प्रश्न अपने संमुख नहीं रखा, और जबतक वह प्रश्न स्वयं मेरे अंदर पल्लवित होकर मुझे तुरंत जवाब देनेके लिए विवश नहीं करने लगा तबतक मैंने उन नकली जवाबों पर ही संतोष किया, जो विज्ञान देता है।

प्रयोगात्मक विज्ञानके क्षेत्रमें तो मैंने अपनेसे यह कहा—‘प्रत्येक वस्तु जटिलता और पूर्णता की तरफ बढ़ती हुई स्वयं विकसित होती और विशेषता प्राप्त करती है और कुछ नियम उनकी इस गतिका नियंत्रण करते हैं। तुम संपूर्णके एक अंश हो। जहांतक जानना संभव है वहांतक संपूर्णको जान लेने और विकासके नियमका परिचय प्राप्तकर लेनेपर तुमको संपूर्णके बीच अपने स्थानका पता भी चल जायगा।’ मुझे कहते हुए लज्जा होती है कि एक ऐसा समय था जब मैं इस उत्तरसे संतुष्ट दीखता था। यह वही समय था जब मैं स्वयं अधिक जटिल बनता जा रहा था और विकसित हो रहा था। मेरी मांस-पेशिया विकसित और दृढ़ हो रही थीं, मेरी स्मरणशक्ति, मेरी समझने-सोचनेकी शक्ति बढ़ रही थी; और अपने अंदर इस विकासका अनुभव करते हुए मेरे लिए यह सोचना स्वाभाविक था कि जगतका नियम ऐसा ही है और इसीमें मुझे अपने जीवनके प्रश्नका हल ढूंढना चाहिए। लेकिन एक ऐसा समय आया जब मेरे अंदरका विकास रुक गया। मैंने अनुभव किया कि मेरा विकास नहीं हो रहा है; बल्कि मैं मुरझा रहा हूँ, मेरी मांस-पेशियां कमजोर होती जाती हैं, मेरे दांत गिरते जाते हैं, और मैंने देखा कि नियमसे न केवल कोई बात समझमें नहीं आती, बल्कि ऐसा कोई नियम न तो कभी था, न कभी हो सकता है और मैंने अपने जीवनकी एक अवस्थामें अपने अंदर जो कुछ पाया उसे ही नियम मान लिया था। अब मैंने इस नियमकी परिभाषा पर विचार करना शुरू किया तो मेरे सामने यह बात स्पष्ट हो गई कि इस तरह अनंत विकासका कोई नियम नहीं हो सकता। यह स्पष्ट हो गया कि यह कहना कि ‘असीम अवकाश और समयमें प्रत्येक वस्तु विकसित होती है, अधिक पूर्ण और जटिल होती है तथा विशेषता प्राप्त करती है’ मानो कुछ न कहनेके बराबर है। ये सब शब्द बेमानी हैं; क्योंकि असीममें न कुछ जटिल है, न सरल है, न आगे बढ़ना है, न पीछे हटना है, न अच्छा है, न बुरा।

फिर इन सबके ऊपर मेरा निजी सवाल कि ‘मैं अपनी इच्छाओंके

साथ क्या हूँ?', अनुत्तरित ही रहा। मैं समझ गया कि वे सब विज्ञान बड़े दिलचस्प हैं, बड़े आकर्षक हैं; पर जीवनके प्रश्नके ऊपर उनके प्रयोगका जहांतक सवाल है वे उलटी दिशामें ही ठीक और स्पष्ट हैं। जीवनके प्रश्नपर उनकी संगति जितनी ही कम बैठती है उतने ही यथाथ और स्पष्ट वे हैं। वे जीवनके प्रश्नका उत्तर देनेकी जितनी ही कोशिश करते हैं, उतने ही और आकर्षणहीन होते जाते हैं। अगर कोई विज्ञानोंके उस विभागकी तरफ ध्यान दे जो जीवनके प्रश्नका उत्तर देनेकी कोशिश करता है (इस विभाग में शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, समाजविज्ञान आदि हैं) तो वहां उसे विचारोंकी आश्चर्यजनक दीनता, सबसे अधिक अस्पष्टता, अप्रासंगिक प्रश्नोंको हल करनेका एक बिल्कुल अनुचित और झूठा दावा तथा हर एक आचार्यद्वारा दूसरेका, और अपनेद्वारा अपनी ही बातोंका भी, निरंतर ग्वंडन होता दिखाई देगा। अगर हम उन विज्ञानोंकी तरफ देखते हैं, जिनका जीवनके प्रश्नोंको हल करनेसे कोई संबंध नहीं है, पर जो स्वयं अपने विशेष वैज्ञानिक प्रश्नोंका जवाब देते हैं, तो इंसानकी दिमागी ताकतको देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता है, पर हम पहलेसे ही जान चुके होते हैं कि वे जीवनके प्रश्नोंका कोई जवाब नहीं देते। वे तो जीवनके प्रश्नोंकी उपेक्षा करते हैं। उनका कहना है; 'तुम क्या हो और क्यों जीते हो, इस प्रश्नका न तो हमारे पास जवाब है और न उसके बारेमें हम सोचते हैं। हा, अगर तुम प्रकाश और रासायनिक मिश्रणोंके नियमोंको जानना चाहो, अगर तुम चेतन पदार्थोंके विकासके नियमोंसे अबगत होना चाहो, अगर तुम देह और उसके रूपके नियमोंकी जानकारी हासिल करना चाहो, अगर तुम गुण और परिमाणका संबंध जानना चाहो, अगर तुम अपने मस्तिष्कके नियमोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहो तो इन सबके हमारे पास स्पष्ट, यथार्थ और निर्विवाद उत्तर मौजूद हैं।'।

साधारण ढंगसे कहना चाहें तो जीवनके प्रश्नोंके साथ प्रयोगात्मक विज्ञानोंके संबंधको यों व्यक्त किया जा सकता है : प्रश्न—'हम क्यों जी

रहे हैं ?' उत्तर—'अनंत अवकाश और अनंत कालमें अत्यंत क्षुद्र अंश अनंत जटिल रूपोंको ग्रहण करते हैं । जब तुम इम रूप-परिवर्तनके नियमोंको समझ लोगे तब तुम यह भी जान जाओगे कि पृथ्वीपर क्यों रह रहे हो ?'

इसके बाद मैंने निगूढ़ विज्ञानोंके क्षेत्रमें अपनेसे कहा—'संपूर्ण मानवता आध्यात्मिक सिद्धांतों और आदर्शोंके आधारपर जाती और विकसित होती है । यही सिद्धांत और आदर्श उसका पथ-प्रदर्शन करते हैं । ये आदर्श धर्म, विज्ञान, कला और शासन पद्धतिमें व्यक्त होते हैं । ये आदर्श दिन-दिन ऊंचे होते जाते हैं और मानवता अपने सर्वोच्च कल्याणकी ओर बढ़ती जाती है । मैं मनुष्यताका अंश हूँ, इसलिए मेरा धंधा मानवताके आदर्शोंकी स्वीकृति और माधनाको आगे बढ़ाना है ।' और अपनी मानसिक दुर्बलताके ज़मानेमें मैं इस उत्तरसे संतुष्ट था; पर ज्यों ही जीवनका प्रश्न मेरे सामने स्पष्ट रूपमें आया, ये विचार नुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर खत्म हो गये । जिस सिद्धांतहीन दुर्बलताके साथ ये विज्ञान मनुष्य-जातिके एक छोटे हिस्सेपर किये गये अभ्ययनके बलपर स्थापित परिणामोंको सामान्य परिणामोंके रूपमें व्यक्त करते हैं, जिस प्रकार मनुष्यताके आदर्शोंके विषयमें इसके विभिन्न अनुयायी एक दूसरेके मतका खंडन करते हैं, इन बातोंको छोड़ भी दें तो भी इस विचारधारामें यदि मूर्खता नहीं तो आश्चर्य यह है कि हर आदमीके सामने आनेवाले प्रश्नों : 'मैं क्या हूँ ?' या 'मैं क्यों जीता हूँ ?' या 'मुझे क्या करना चाहिए ?' का जवाब देनेके लिए पहले इस प्रश्नका जवाब ढूंढना जरूरी समझा जाता है कि 'ममष्टिका जीवन क्या है' (और यह उसके लिए अज्ञात है और समयकी एक अत्यंत क्षुद्र अवधिमें वह इसके एक अत्यंत क्षुद्र अंशसे ही परिचित है) । इस मतसे यह जाननेके लिए कि वह क्या है, मनुष्यको पहले सारी रहस्यमयी मानव-जाति की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए—उस मानव-जातिकी, जिसमें उसीकी तरह अग्र-गणित आदमी है, जो एक-दूसरेको नहीं जानते ब्रूह्मते ।

मैं स्वीकार करता हूँ कि ऐसा भी एक ज़माना था जब मैं इन बातोंमें विश्वास करता था। यह वही ज़माना था जब अपनी सनकोंको उचित ठहरानेवाले कुछ प्रिय आदर्श मैंने बना रखे थे और एक ऐसे सिद्धांतका निर्माण करनेका मैं प्रयत्न कर रहा था जिससे मेरी सनकोंको ही मानवताका नियम माना जा सके। लेकिन ज्यों ही मेरी आत्मामें जीवनका प्रश्न पूरी स्पष्टताके साथ उदित हुआ, त्यों ही यह जवाब मिट्टीमें मिल गया और मैंने समझ लिया कि जैसे प्रयोगात्मक विज्ञानोंमें ऐसे सच्चे विज्ञान और अधूरे विज्ञान हैं जो अपनी शक्ति और योग्यताके बाहरके सवालोंका जवाब देनेकी कोशिश करते हैं, उसी तरह इस क्षेत्रमें भी ऐसे मिश्र विज्ञानोंका एक पूरा वर्ग है जो अप्रामांगिक प्रश्नोंका जवाब देनेकी कोशिश करते हैं। इस तरहके अधूरे विज्ञान, न्यायविधान और सामाजिक-ऐतिहासिक विज्ञान, अपने-अपने ढंगपर, संपूर्ण मानवताके जीवनके प्रश्नको हल करनेका बहाना करते हुए मनुष्यके जीवनके प्रश्नोंको हल करनेकी चेष्टा करते हैं।

पर जिस प्रकार मनुष्यके प्रयोगात्मक ज्ञानके क्षेत्रमें जो व्यक्ति मच्चाईके साथ शोध करता है कि उसे किस तरह जीवन धिताना चाहिए और उसे इस उत्तरसे संतोष नहीं हो सकता कि—‘असीम अवकाशमें असंख्य अणुओंके अनंतकालके बीच असीम जटिल परिवर्तनोंका अध्ययन करो, तब तुम जीवनको समझ सकोगे’, उसी प्रकार एक ईमानदार आदमी इस उत्तरसे भी संतुष्ट नहीं हो सकता कि—‘मानव-जातिके संपूर्ण जीवनका अध्ययन करो, जिसके आदि-अंत तकका हमें पता नहीं है, जिसके एक अंश तकका हमें ज्ञान नहीं है, और तब तुम अपने जीवनको समझ सकोगे।’ प्रयोगात्मक अधूरे विज्ञानोंकी तरह ये अन्य अधूरे विज्ञान भी अस्पष्टताओं, अर्थार्थताओं, मूर्खताओं और पारस्परिक विरोधोंसे पूर्ण हैं। प्रयोगात्मक विज्ञानकी समस्या तो भौतिक व्यापारमें कार्य-कारणके अनुक्रमकी समस्या है। पर प्रयोगात्मक विज्ञानमें ज्यों ही एक अंतिम कारणका प्रश्न उपस्थित किया जाता है त्यों ही वह मूर्खतापूर्ण हो जाता है।

निगूढ़ विज्ञानकी समस्या जीवनके मूलतत्त्वका स्वीकृतिकी समस्या है। ज्यों ही पारस्परिक व्यापार (जैसे सामाजिक और ऐतिहासिक व्यापार) की खोज आरम्भ होती है, यह भी मूर्खतापूर्ण बन जाता है।

प्रयोगात्मक विज्ञान जब अपने शोधमें अंतिम कारणका प्रश्न नहीं उठाता तभी निश्चयात्मक उत्तर देता और मानव मस्तिष्ककी महानता प्रकट करता है। इसके विपरीत निगूढ़ विज्ञान जब दृश्य व्यापारके पारस्परिक कारणोंसे संबंध रखनेवाले सवालको किनारे रख देता है और मनुष्यका अंतिम कारणके संबंधसे अध्ययन करता है, तभी वह विज्ञान होता है और मानवीय मस्तिष्ककी महानताका प्रदर्शन करता है। विज्ञानके इस राज्यमें, गोलकके ध्रुव रूपमें, अध्यात्म-विद्या या तत्त्व-दर्शन है। यह विज्ञान इस प्रश्नका स्पष्ट वर्णन करता है कि 'मैं क्या हूँ और जगत् क्या है? मेरा अस्तित्व क्यों है और जगत्का अस्तित्व क्यों है?' जबसे इसका अस्तित्व है यह एक ही तरह का उत्तर देता रहा है। चाहे दर्शन-शास्त्री मेरे अंदर मौजूद जीवन-तत्त्वको, या अन्य सब चीजोंके अंदरके जीवन-सारको, 'धारणा', 'सार', 'भावना' (स्फिड) अथवा 'संकल्प-शक्ति'के नामसे पुकारे, असलमें वह एक ही बात कहता है : यह तत्त्व मौजूद है और मैं उसी तत्त्वसे बना हूँ, पर यह तत्त्व क्यों मौजूद है, इसे वह नहीं जानता और अगर वह सच्चा चिंतक है तो ऐसा कहता भी नहीं। मैं पूछता हूँ : 'यह तत्त्व मौजूद ही क्यों रहे? यह है और रहेगा। इससे नतीजा क्या निकलता है?'... दर्शन न केवल इसका कोई उत्तर नहीं देता, बल्कि वह स्वयं यही प्रश्न पूछता रहता है। और अगर वह सच्चा दर्शन है तो उसकी सारी चेष्टा इस प्रश्नको स्पष्टतापूर्वक रखनेतक ही है। अगर वह दृढ़तापूर्वक अपने कर्त्तव्यपर डटा रहे तो सवालका जवाब सिर्फ इसी तरह देगा : 'मैं क्या हूँ और जगत् क्या है?'—'सब कुछ और कुछभी नहीं।' इसीतरह वह 'क्यों'के जवाबमें कहेगा:—'मैं नहीं जानता।'।

इस तरह मैं दर्शन-शास्त्रके इन जवाबोंको चाहे जिस तरह उलटू-

पलटूँ, मुझे उनसे जवाब-जैसी कोई चीज़ कभी हासिल नहीं हो सकती— इसलिए नहीं कि प्रयोगात्मक विज्ञानके क्षेत्रकी तरह उत्तरका मेरे सवालसे कोई संबंध नहीं, बल्कि इसलिए कि संपूर्ण शास्त्रकी गति मेरे सवालकी ओर होते हुए भी, उसका कोई उत्तर नहीं है और उत्तरकी जगह वही सवाल हमें एक जटिल रूपमें सुनायी पड़ता है।

: ६ :

जीवनके प्रश्नोंके उत्तरकी खोजमें मुझे ठीक वही अनुभव हुआ जो जंगलमें रास्ता भूल जानेवाले आदमीको होता है।

वह जंगलके बीचकी खुली ज़मीनमें पहुंचता है, किसी वृक्षपर चढ़ जाता है और उसे असीम दूरीतक दिखाई देता है, पर वह देखता है कि उसका घर उधर नहीं है, न हो सकता है। तब वह फिर घने जंगलमें घुस जाता है। वहां उसे अंधेरा दिखता है, पर घर वहां भी नहीं है।

इसी तरह मैं मानवीय ज्ञानके जंगलमें भटकता रहा। गणित तथा प्रयोगात्मक विज्ञानोंके किरणोंमें मुझे क्षितिज तो साफ-साफ दिखाई देता था, पर उस दिशामें घर नहीं हो सकता था। तब मैं निगूढ़ विज्ञानोंके अंधकारमें घुस जाता। मैं जितना ही आगे बढ़ा उतना ही गहरे अंधकारमें फंसा जाता और मुझे विश्वास हो गया कि इससे बाहर निकलनेका रास्ता न है, न हो सकता है।

ज्ञानके प्रकाशमान पक्षकी तरफ मुककर मैंने समझा कि मैं केवल प्रश्नसे अपना ध्यान हटा रहा हूँ। मेरे सामने खुलनेवाला क्षितिज चाहे कितना ही लुभावना क्यों न हो, और उन विज्ञानोंके असीम विस्तारमें प्रवेश करना चाहे कितना ही आकर्षक क्यों न हो, मैं समझ चुका था कि वे जितने ही स्पष्ट और साफ होते हैं उतने ही मेरे लिए बेकार हैं, और उतना ही मेरे प्रश्नका थोड़ा उत्तर देते हैं।

अब मैंने अपनेसे कहा—‘मैं जानता हूँ कि विज्ञान इतनी लगनके

साथ किसका शोध करना चाहता है और यह भी जानता हूँ कि उस मार्गपर चलकर मेरे जीवनका क्या प्रयोजन है, इस प्रश्नका उत्तर नहीं मिल सकता ।’ निगूढ़ विज्ञानोंके क्षेत्रमें मैने समझा कि यद्यपि विज्ञानका सीधा लक्ष्य मेरे प्रश्नका उत्तर देना है, पर इसके बावजूद भी मेरे प्रश्नका कोई उत्तर नहीं है—सिवाय उस उत्तरके जो मैं स्वयं दे चुका हूँ : “मेरे जीवनका अर्थ क्या है ?” उत्तर : “कुछ नहीं ।” “मेरे जीवनका फल क्या होगा ?” उत्तर : “कुछ नहीं ।” “जितनी भी चीज़ें वर्तमान हैं, उनका अस्तित्व क्यों है, और मेरा अस्तित्व क्यों है ?” उत्तर—“क्योंकि अस्तित्व है ।”

ज्ञानके एक क्षेत्रमें प्रश्न करनेपर मुझे उन बातोंके बारेमें असंख्य परिमाणमें ठीक-ठीक उत्तर प्राप्त हुए जिनके संबंधमें मैने कुछ नहीं पृच्छा था—जैसे तारोंके रासायनिक उपकरण, हरक्यूलीज़ नक्षत्र समूहकी और सूर्यकी गति, प्राणियों एवं मनुष्यकी उत्पत्ति, ईश्वरके अत्यंत सूक्ष्म कणोंके रूपके विषयमें । परंतु ज्ञानके इस क्षेत्रमें मेरे प्रश्न—“मेरे जीवनका तात्पर्य क्या है ?”—का केवल यही उत्तर था कि—“तुम वही हो जिसे तुम अपना ‘जीवन’ कहते हो; तुम कणोंके एक आकस्मिक और अनित्य संघटन हो । इन कणोंकी पारस्परिक अंतःक्रियाएँ और तब्दीलियाँ तुममें वह चीज़ पैदा करती हैं जिन्हें तुम अपना ‘जीवन’ कहते हो । यह संघटन कुछ समयतक चलता रहेगा । इसके बाद इन कणोंकी अंतःक्रियाएँ बंद हो जायंगी और जिसे तुम ‘जीवन’ कहते हो वह भी बंद हो जायगा और साथ ही तुम्हारे सब प्रश्नोंका भी अंत हो जायगा । तुम किसी चीज़के अकस्मात् जुड़कर बन गये छोटे पिंड हो । इस क्षुद्र पिंडमें उबाल आता है । इसीको वह क्षुद्र पिंड अपना ‘जीवन’ कहता है । पिंड बिल्वर जायगा, उबाल समाप्त हो जायगा और साथ ही सब प्रश्नोंका भी अंत हो जायगा ।” विज्ञानका स्पष्ट पहलू इस तरह उत्तर देता है और अगर वह अपने सिद्धांत पर ठीक-ठीक चले तो इसके सिवा दूसरा उत्तर दे ही नहीं सकता ।

इस तरहके उत्तरसे कोई भी आदमी देख सकता है कि इससे प्रश्नका कोई उत्तर नहीं मिलता । मैं अपने जीवनका तात्पर्य जानना चाहता हूँ, पर “यह असीमका एक क्षुद्र अंश है” इस प्रकारका उत्तर जीवनका कोई अभिप्राय बतानेकी जगह उसके प्रत्येक संभव तात्पर्यको नष्ट कर देता है । प्रयोगात्मक विज्ञानका यह पक्ष निगूढ़ विज्ञानसे जो अस्पष्ट समझौते करता और कहता है कि जीवनका मर्म विकास एवं विकासके साथ सह-योगमें निहित है तब इनकी अयथार्थता और स्पष्टताके कारण इन्हें उत्तर नहीं माना जा सकता ।

विज्ञानका दूसरा यानी निगूढ़ पक्ष, जब अपने सिद्धांतोंको दृढ़तापूर्वक पकड़कर चलता है और इस प्रश्नका सीधा जवाब देना चाहता है तो वह सदा यह एक ही जवाब एक ही तरहसे देता है, सब युगोंमें देता रहा है : “जगत् असीम और अचिंत्य है ।” मानव-जीवन उस अचिंत्य ‘समष्टि’का एक अचिंत्य अंश है, फिर मैं निगूढ़ एवं प्रयोगात्मक विज्ञानोंके उन सब समझौतों या मिश्रणोंको अलग रख देता हूँ जो न्याय, राजनीतिक और ऐतिहासिक नामधारी अर्द्ध-विज्ञानोंके एक पूरे बोझकी सृष्टि करते हैं ! इन अर्द्ध-विज्ञानोंमें भी विकास और प्रगतिकी धारणाएँ गलत रूपमें उपस्थित की जाती हैं, अंतर केवल इतना होता है कि वहा प्रत्येक वस्तुकी प्रगतिकी बात थी और यहां मनुष्य-जातिके जीवनके विकासकी बात है । इममें भी भूल पहलेकी तरह ही है : असीममें विकास और प्रगतिका कोई लक्ष्य नहीं हो सकता, और जहांतक मेरे प्रश्नका संबंध है, कोई जवाब नहीं मिलता ।

सच्चे निगूढ़ विज्ञानमें यानी सच्चे दर्शनशास्त्रमें (उसमें नहीं जिसे शापनहार पुस्तकीय तत्त्वज्ञान कहता है और जो सारी मौजूदा चीजोंको नये दार्शनिक विभागोंमें बांटता है और उन्हें नये-नये नामोंसे पुकारता है), जहा दार्शनिक तात्त्विक प्रश्नकी ओरसे अपनी दृष्टि नहीं हटाता, एक ही उत्तर मिलता है । यह वही उत्तर है जिसे सुकरात, शापनहार, सोलोमन (सुलेमान) और बुद्ध देते रहे हैं ।

सुकरात जब मरनेकी तैयारी कर रहा था, तब उसने कहा था—“हम जीवनसे जितनी ही दूर जाते हैं उतना ही सत्यके निकट पहुंचते हैं; क्योंकि हम सत्यके प्रेमी जीवनमें आग्निर किस चीज़को पानेका प्रयत्न करते हैं ? दैहिक जीवनसे पैदा होनेवाली सब बुराइयों तथा स्वयं देहसे मुक्तिकी ही न ? अगर यह बात है तो मौतको पास आयी देख हम खुश हुए बिना कैसे रह सकते हैं ?

“ज्ञानी पुरुष अपनी सारी ज़िदगीभर मृत्युकी माधना करता है, इस-लिए मृत्यु उसके लिए भयंकर नहीं होती।”

और शापनहार कहता है :

“जगतकी अत्यांतरिक प्रकृतिको ‘संकल्प’के रूपमें पहचान लेने और प्रकृतिकी अस्पष्ट शक्तियोंके अचेतन व्यापारसे लेकर मनुष्यके पूर्णतः चैतन्ययुक्त कार्योंतक प्रकृतिके संपूर्ण गोचर पदार्थोंको केवल उस ‘संकल्प’की पादार्थिकता या सरूपता मान लेनेपर उसकी शून्यतासे हम भाग नहीं सकते और हमको मानना पड़ेगा कि स्वेच्छापूर्वक इस संकल्पका त्याग कर देनेपर उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले संपूर्ण गोचर पदार्थोंका भी नाश हो जाता है; उन संपूर्ण अंतहीन एवं अविश्रात कार्य-परंपराओंका लोप हो जाता है, जिसके अंदर और जिनके द्वारा संसारका अस्तित्व है; एकके बाद एक आनेवाले विविध रूपोंका अंत हो जाता है और रूपके माध्य संकल्पकी संपूर्ण अभिव्यक्तिया भी समाप्त हो जाती हैं और अंतमें इस अभिव्यक्तिके जागतिक रूपों यानी काल और अवकाश तथा इसके अंतिम मौलिक रूप चेतना और पदार्थ (आत्मा और भूत) सबका अंत होजाता है। जहां ‘संकल्प’ नहीं है, वहां प्रदर्शन नहीं है और जगत भी नहीं है। केवल शून्य ही रह जाता है। इस शून्यताकी अवस्था-तक पहुंचनेमें हमारी प्रकृति बाधक होती है। और हमारी प्रकृति वही हमारी जीनेकी इच्छा मात्र है—यही हमारी दुनिया है। हम विनाशसे इतनी घृणा करते हैं या दूसरे शब्दोंमें जीनेकी

इच्छा रखते हैं, यह इस बातका सूचक है कि हम जीवनका दृढ़ कामना करते हैं। हम इस संकल्पके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं और इसके अलावा और कुछ जानते भी नहीं हैं। इसलिए इस संकल्पके संपूर्ण क्षयके पश्चात् जो कुछ बचता है, वह हमारे-जैसे संकल्पसे भरे हुए लोगोंके लिए निश्चय ही कुछ नहीं है। पर इसके विरुद्ध जिनके अदर संकल्पका स्वयं क्षय हो गया है, उनके लिए हमारी यह वास्तविक-सी लगनेवाली दुनिया, अपने संपूर्ण सूर्यों एवं आकाशगंगाओंके साथ भी, शून्य ही है।”

सुलेमान कहता है—“ वृथाभिमानका अभिमान, वृथाभिमानका अभिमान !—सब निस्सार है, वृथाभिमान है ! आदमी सूर्यके नीचे जो सारी मेहनत करता है उससे उसे क्या फायदा होता है ? एक पीढ़ी जाती है और दूसरी आती है; लेकिन पृथ्वी सदा बनी रहती है....जो चीज़ पहले रही है, वही अब भी होगी; जो काम किया गया है, वह वही है जो आगे भी किया जायगा : सूर्यके नीचे (दुनियामें) कोई भी चीज़ नयी नहीं है। क्या कोई ऐसी चीज़ है जिसे देखकर कहा जा सके—देखो, यह नयी है ? जो है, वह पुगने जमानेमें पहले ही रह चुकी है। पूर्व वस्तुओंको कोई याद नहीं करता; आगे जो आयेगे उनके साथ आनेवाली चीज़ोंको भी लोग याद नहीं रक्वेंगे—भूल जायेंगे। मैं उपदेशक एक दिन जरूसलममें इसराइलका बादशाह था। और मैंने ज्ञानके सहारे आकाशके नीचेकी वस्तुओंका शोध करनेमें अपना मन लगाया : यह तीव्र वेदना ईश्वरने मनुष्यके उपयोगके लिए प्रदान की है। दुनियामें जितने काम किये जाते हैं सबको मैंने देखा है; वह सब मिथ्याहंकार और आत्माका उद्वेगमात्र हैं। .. मैंने स्वयं अपने हृदयमें ध्यान लगाया, और कहा— ‘ओह ! मैं बड़ी ऊंची अवस्थामें पहुँच गया हूँ और मेरे पहले जरूसलममें जितने लोग हुए उन सबसे अधिक ज्ञान मुझे है। हा, मेरे हृदयको विवेक और ज्ञानका महान अनुभव है। और मैंने ज्ञान तथा पागलपन और मूर्खताको जाननेमें मन लगाया। पर मैंने अनुभव किया कि यह सब भी आत्मा एवं अंतःकरणका उद्वेग ही है; क्योंकि अधिक ज्ञानमें अधिक

दुःख है। और जो अपने ज्ञानको बढ़ाता है वह दुःखको भी बढ़ा लेता है।”

मैंने अपने दिलमें कहा—“हटो, चलो, अब मैं प्रफुल्लतासे तुझे सिद्ध करूंगा, इसलिए सुख भोगूंगा।” और देखो—यह भी मिथ्याहंकार है। मैंने हँसीके बारेमें कहा : यह पागल है। उल्लासके बारेमें कहा : यह क्या कर सकता है ? मैंने अपने मनमें यह देखनेकी कोशिश की कि मैं अपने हाड़-मांसको शराबसे कैसे खुश रख सकता हूँ। मैंने इसकी कोशिश की कि मेरे हृदयमें ज्ञानकी ज्योति जगमगाती रहे और साथ ही मैं बुराइयोंमें प्रवेश करके देखूँ कि मनुष्य जो इतने दिन जीता है तो उसके जीवनके लिए सबसे अच्छी बात क्या है। मैंने बड़े-बड़े काम किये; मैंने अपने लिए मकान बनवाये; अंगूरकी खेती की; मैंने बगीचे और उपवन खड़े किये और उनमें तरह-तरहके फलोंके वृक्ष लगवाये। बागके वृक्षोंको सींचनेके लिए मैंने नहरें बनवायां; मैंने दास और दासिया रक्खीं और खुद अपने मकानमें दास पैदा कराये; पशुओं और चौपायोंका जैसा संग्रह मेरे पास था वैसा मेरे पहले जरूसलममें कभी देखा नहीं गया था। मैंने राजाओं और बादशाहों तथा सूत्रोंमें सोना-चादी, रत्न और आश्चर्यजनक कोष इकट्ठा किया। मेरे पास गायकों और गायिकाओंकी कमी न थी; सब तरहके वाद्य-यंत्रोंका, जिनसे मानव-जाति आनन्द-उपभोग करती है, मेरे पास भंडार था। इस तरह मैं महान था और मेरे पहले जरूसलममें जितने लोग हुए उन सबसे अधिक वैभव मेरे पास था। तिसपर मेरा विवेक और ज्ञान भी मेरे साथ था। मेरी आखोंने जिस चीज़की आकाक्षा की, मैंने उन्हें वही दिया। किसी तरहके मुख-भोगसे मैंने अपने हृदयको वंचित नहीं रक्खा।...बादमें मैंने अपने उन सब कामोंपर गौर किया; उन सब चीज़ोंपर ध्यान दिया जिन्हें पानेके लिए मैंने इतना श्रम किया था। मैंने देखा—सब मिथ्याहंकार और आत्मोद्वेग-मात्र है; इन चीज़ोंसे कुछ भी लाभ नहीं है। तब मैंने इनपरसे अपना मन हटाकर ज्ञान, पागलपन और बुराईको देखनेकी कोशिश की...पर मैंने अनुभव किया

कि इन सबके साथ एक ही घटना घटित होती है । तब मैंने अपने दिलमें कहा कि मूर्खके साथ भी वही बात होती है और मेरे साथ भी वही बात होती है, तब मैं उससे अधिक बुद्धिमान किस तरह हूँ ? तब मैंने मनमें कहा कि यह भी एक मिथ्याहंकार ही है; क्योंकि जैसे मूर्खकी सदा याद नहीं रहती वैसे ही बुद्धिमानको भी लोग सदा याद नहीं रखते, भूल ही जाते हैं । आज जो कुछ है वह सब लोग आनेवाले दिनों यानी भविष्यमें भूल जायेंगे । और बुद्धिमान आदमी कैसे मरता है ? वैसे ही जैसे मूर्ख मरता है । इसलिए मुझे जीवनसे घृणा हो गयी; क्योंकि संसारमें जो कुछ काम है सब दुःखसे पूर्ण है, सब कुछ मिथ्याहंकार और आत्मोद्वेगमात्र है । बस, मैंने अबतक जो कुछ किया था, जो काम किये थे, उन सबसे मुझे घृणा हो गई; क्योंकि मैं देखता था कि इन सबको अपने बाद आनेवाले आदमीके लिए मुझे छोड़ जाना होगा ।....भला आदमी जो इतना श्रम करता और इतनी परेशानी उठाता है उसमें उसे क्या मिलता है ? उसके सारे दिन शोक और दुःखसे भरे हुए हैं; रातमें भी उसके हृदयको कोई विश्राम नहीं मिलता । यह भी मिथ्याभिमान है । मनुष्यके जीवनको इतनी सुरक्षा नहीं दी गई है कि वह खाये, पीये और अपने काम-धामसे अपने हृदयको प्रफुल्ल रखे ।..सभी चीज़ें सब लोगोके पास एक ही तरहसे आती हैं : पुण्यात्मा और दुष्ट दोनोंके साथ एक ही बात होती है; अच्छे और बुरे, स्वच्छ और अस्वच्छ, त्याग करने वाले और त्याग न करनेवाले, सज्जन और पापी, क्रम खानेवाले और क्रमसे डरनेवाले सबके लिए एक ही बात है । सूर्यके नीचे (दुनियामें) जो कुछ किया जाता है उस सबमें यही दोष है कि सबके साथ एक ही घटना घटित होती है । आह ! मानव-पुत्रोंका हृदय बुराइयोंसे भरा हुआ है और जबतक वे जीते हैं उनके हृदयमें पागलपन रहता है और उसके बाद वह मृत्युकी गोदमें चले जाते हैं । जो जीवितोंमें हैं उनके लिए आशा है, एक जीवित कुत्ता मरे हुए शेरसे अच्छा है; क्योंकि जीवित जानते हैं कि वे मरेंगे, परन्तु मरे हुए कुत्तोंको कुछ पता नहीं—न उनको कोई पुरस्कार ही मिलता है ।

उनकी याद भी भुला दी जाती है। मौतके साथही उनके प्रेम, उनकी घृणा; उनके ईर्ष्या-द्वेष सबका अंत हो जाता है। फिर कभी दुनियामें किये जानेवाले किसी काममें उनका कोई हिस्सा नहीं रहता।”

ये सुलेमान अथवा जिसने भी इसे लिखा हो, उसके शब्द हैं।

अब भारतीय ज्ञान भी सुनिये :

शाक्यमुनि एक तरुण और सुखी राजकुमार थे। उनसे बीमारी, बुढ़ापे और मृत्युके अस्तित्वकी बात छिपा रखी गई थी। एक दिन वह सैरको निकले और उन्होंने एक अत्यंत जीर्ण बूढ़े आदमीको देखा, जिसके दांत टूट गये थे और मुंहसे फेन निकल रहा था। चूंकि राजकुमारसे तबतक बुढ़ापेका अस्तित्व छिपाया गया था, इसलिए उनको यह दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने सारथीसे पूछा—‘यह क्या चीज है और इस आदमीकी इतनी बुरी और दुखदाई हालत क्यों है?’ जब उन्हें मालूम हुआ कि सभी मनुष्योंके भाग्यमें यह बात लिखी है और स्वयं उनकी भी अनिवार्यतः वही हालत होगी तो वह आगे सैरको न जा सके। सारथीको घर लौटनेकी आज्ञा दी, जिससे वह इस घटना पर विचार कर सके। घर लौटकर उन्होंने अपनेको एक कमरेमें बंद कर लिया और घटनापर विचार करने लगे। शायद उन्होंने अपने दिलको किसी तरह समझा-बुझा लिया होगा; क्योंकि बादमें वह फिर प्रफुल्ल और सुखी होकर सैरको निकले। इस बार उनको एक बीमार आदमी दिग्वायी दिया। इस आदमीका शरीर सूख गया था, वह नीला पड़ रहा था, शरीर काप रहा था और आंखोंमें अंधेरा छा रहा था। चूंकि राजकुमारसे बीमारीके अस्तित्वकी बात छिपायी गई थी, इसलिए उन्होंने इस आदमीको देखते ही रथ रुकवा दिया और पूछा—‘क्या बात है?’ जब उन्हें मालूम हुआ कि यह बीमारी है जो सभी में होती है और स्वस्थ और प्रसन्न राजकुमार भी कल बीमार पड़ सकते हैं तो वह सैरका आनंद भूल गये। घर लौटनेकी आज्ञा दी और शायद सोच-विचारके बाद अपने मनको किसी तरह सांत्वना देनेमें समर्थ हुए; क्योंकि दूसरे दिन वह फिर तीसरी

बार मेरके लिए निकले । पर इस बार भी उन्हे एक नया दृश्य दिखाई दिया । उन्हांने देखा कि लोग किसी चीज़को कंधे पर रखे लिए जा रहे हैं । पूछा—‘यह क्या है ?’ उत्तर मिला—‘मुरदा है ।’ राजकुमारने सवाल किया—‘मुरदा क्या होता है ?’ उनको बताया गया कि उस आदमीकी-सी अवस्थामें हो जाने पर मुरदा कहते हैं । राजकुमार अर्थीके नज़दीक गये, कपड़ा हटाया और उसे देखा । पूछा—‘अब इसका क्या होगा ?’ लोगोंने कहा कि अब इसे जलायेंगे । ‘क्यों ?’ क्योंकि अब वह फिर जी नहीं सकता और उसके शरीरसे सिर्फ बदबू और कीड़े पैदा होंगे । ‘क्या सब आदमियोंकी यही गति होती है ? क्या मेरी भी यही हालत होगी ? क्या लोग मुझे भी जला देंगे ? क्या मेरे शरीरसे भी बदबू पैदा होगी और उसे कीड़े खायेंगे ?’ उत्तर मिला—हां । राजकुमारने सारथीसे कहा—‘घर लौटो । मैं फिर कभी मनोरंजन के लिए सैर सपाटे को न निकलूंगा ।’

तबसे शाक्यमुनिके हृदयमें वेचैनी पैदा हुई । उनको जीवनमें कोई सात्वना न मिल सकी और उन्हांने निर्णय किया कि जीवन सबसे बड़ी बुराई है । उन्हांने अपनी आत्माकी सारी शक्ति इस बुराईसे मुक्ति पाने और दूसरोंको मुक्त करनेमें और इस चेष्टामें लगा दी कि मृत्युके बाद फिर जीवनका चक्र न चल सके, बल्कि समूल उसका अंत हो जाय । यह भारतीय ज्ञानकी वाणी है ।

मानवीय ज्ञान जब जीवनके प्रश्नका उत्तर देता है तब इसी तरहके सीधे उत्तर उससे मिलते हैं ।

‘दैहिक जीवन बुरा एवं असत् है । इसलिए दैहिक जीवनका नाश ही सुख है और हमें उसीकी कामना करनी चाहिये’, यह शापनहारका कथन है ।

‘ज्ञान और अज्ञान, वैभव और गरीबी, सुख और दुःख—जो भी दुनियामें है, सब मिथ्याहंकार और पोल है । आदमी मर जाता है और उसका कोई चिन्ह नहीं बचता । कैसी मूर्खता है,’ यह सुलेमानका कथन है ।

‘दुःख, और अनिवार्यतः शक्तिहीन, वृद्ध तथा मृत्यु होनेकी चेतनाके बीच रहना असंभव है। हमें जीवनसे—सब प्रकारके संभव जीवनके जालसे छूटना ही होगा’, यह बुद्धकी वाणी है।

और इन महापुरुषों एवं चिंतकोंने जो कुछ कहा है उसे लाखों आदमियोंने कहा, सोचा और अनुभव किया है। मैंने भी इसे सोचा और अनुभव किया है।

इस तरह विज्ञानोंके बीच जो सैर मैंने की उससे अपनी निराशासे छूटनेकी जगह मैं उसमें और भी ज़ोरोंके साथ फंसता गया। ज्ञानके एक वर्गने जीवनके प्रश्नका उत्तर ही नहीं दिया; दूसरेने सीधा जवाब दिया और मेरी निराशाको पक्का कर दिया। उसने यह कहनेकी जगह कि जिस नतीजे पर मैं पहुंचा हूँ वह मेरी भूल या मेरे मनकी अस्वस्थ अवस्थाका परिणाम है, उलटते कहा कि मैंने जो सोचा है, ठीक ही सोचा है और मेरे विचार सबसे शक्तिमान मानवी-मस्तिष्कों द्वारा पहुंचे हुए नतीजोंसे मेल खाते हैं।

अपनेको धोखेमें रखनेसे कोई फायदा नहीं है। यह सब मिथ्याहंकार है! जो पैदा नहीं हुआ है वही सुखी है—भाग्यवान है; मृत्यु जीवनसे अच्छी है और आदमोंको जीवनसे अवश्य मुक्ति-लाभ करना चाहिए।

: ७ :

जब मुझे विज्ञानके अंदर कोई जवाब नहीं मिला तब मैंने जीवनमें उसकी खोज शुरू की और आस-पासके लोगोंमें ही उसे पा लेनेकी उम्मीद की। मैंने इस बातपर ध्यान देना शुरू किया कि मेरे, आस-पासके मेरेही जैसे लोग कैसे जीवन व्यतीत करते हैं और उस प्रश्नके प्रति उनका क्या रुख है जिसने मुझे निराशाके भंवरमें लाकर छोड़ दिया है।

जो लोग मेरी-जैसी स्थितिमें थे यानी जिनकी शिक्षा-दीक्षा और जीवन-प्रणाली मेरे समान थी, उनके बीच मैंने यह जवाब पाया।

मैंने पता लगाया कि मेरे, वर्गके आदमी जिस भयानक स्थितिमें थे, उससे निकलनेके लिए चार रास्ते हैं ।

पहला अज्ञानका रास्ता है यानी इस बातको न जानना, न समझना कि ज़िंदगी एक बुराई और फिजूलकी चीज़ है । इस तरहके लोग—विशेष रीतिसे स्त्रियां या नवयुवक या बिल्कुल कुंदज़हन आदमी—अभीतक ज़िंदगीके उस सवालको समझ ही नहीं पाये हैं जो शापनहार, सुलेमान और बुद्धके सामने आया था । वे न तो उस अजगरको ही देख रहे हैं जो उनफ़ी बाट जोह रहा है और न उस टहनी काटनेवाले चूहेको ही देख रहे हैं जिनसे वे लटके हुए हैं । वे सिर्फ़ शहदकी बूँदें चाटते हैं । पर शहदकी बूँदें भी वे थोड़े ही समयतक चाट पाते हैं; कोई चीज़ उनका ध्यान अजगर और चूहेकी तरफ़ ज़रूर खींचेगी और शहद चाटनेका अंत हो जायगा । ऐसे लोगोंसे मुझे कुछ सीखना नहीं है—आदमी जिस बातको जानता है उसकी ओरसे आख़ कैसे मूंद सकता है ?

इससे छूटनेका दूसरा मार्ग विपयासक्ति है । इसका मतलब है—जीवनकी व्यर्थताको जानते हुए भी जो कुछ सुविधाएं मिल गई हैं, उनका फिलहाल उपयोग करना और अजगर एवं चूहेकी परवा न करते हुए अपनी पहुंचमें जितना शहद हो उसे चाटते जाना । सुलेमानने इसी भावको यों व्यक्त किया है—‘तब मैंने आनंदका मार्ग ग्रहण किया; क्योंकि आदमीके लिए दुनियामें खाने-पीने और आनंद मनानेसे बढ़कर और क्या है । ईश्वरने दुनियामें उसे जीनेके जितने दिन दिये हैं, उसमें अगर सुख-भोगका यह क्रम चलता रहे तो फिर और क्या चाहिए ?

‘इसलिए आनंदसे अपनी रोटी खा और उल्लसित हृदयसे अपनी शराब पी ।...जिस पत्नीको अपने मिथ्याहंकारकी ज़िंदगीके दिनोंमें तू प्यार करता है उसके साथ सुखपूर्वक रह....क्योंकि दुनियामें तू जो श्रम करता है उसमें तुझे अपने हिस्सेमें यह चीज़ मिली है । तेरे हाथोंको जो कुछ करनेको मिले उसे अपनी सारी ताकतसे कर; क्योंकि जिस क़ब्रकी तरफ़ तू चला जा रहा है उसमें कोई काम, कोई उपाय, कोई ज्ञान नहीं है ।

इसी मार्गपर चलकर हमारी श्रेणीके अधिकतर मनुष्य अपने लिए जीवन संभव बनाते हैं। अपनी परिस्थितिके कारण उन्हें अपने जीवन में कठिनाईकी जगह आराम और सुख-भोग अधिक मिलता है और अपनी नैतिक अंधताकी वजहसे वे यह भूल जाते हैं कि उनकी स्थितिने जो सुविधा दिला रखी है वह आकस्मिक है और सुलेमानकी तरह हर आदमीको हज़ार पत्निया और महल नहीं मिल सकते। वे यह भी भूल जाते हैं कि हर ऐसे आदमीके बदले, जिसके पास हज़ार औरते हैं, हज़ार आदमी बिना औरतके ही रह जाते हैं और हर महलको बनाने-में हज़ार आदमियोंको पसीना बहाकर काम करना पड़ता है और जिस घटनाचक्रने आज मुझे सुलेमान बना दिया है वही कल मुझे सुलेमानका दास भी बना सकता है। चूंकि इन आदमियोंकी कल्पनाशक्ति बिल्कुल कुंठित हो चुकी होती है, इसलिए वे उन बातोंको भुला सकते हैं, जिनके कारण बुद्धको शांति नहीं मिलती थी—यानी उस अनिवार्य बीमारी, बुढ़ापे और मौतको वे भूल जाते हैं, जो आज या कल इन सब सुखोंका अंत कर देगी।

हमारे ज़मानेके और हमारी तरह ज़िंदगी बितानेवाले अधिकतर आदमी इसी तरह सोचते और अनुभव करते हैं। यह ठीक है कि इनमेंसे कुछ लोग अपने कठिन विचारों और कल्पनाओंको एक तत्त्वज्ञानके रूपमें घोषित करते हैं और उसे 'निश्चयात्मक' (पाज़िटिव) नाम देते हैं; पर मेरी सम्मतिमें, इसके कारण वे उन लोगोंके भुंडसे अलग नहीं किये जा सकते, जो प्रश्नको दृष्टिसे ओट करनेके लिए, शहद चाटते हैं। मैं इन आदमियोंकी नकल नहीं कर सकता, और उनकी जैसी मंद कल्पना न होनेके कारण मैं उनकी तरह इसे बनावटी तौर पर अपने अंदर पैदा भी नहीं कर सकता। मैं अजगर और चूहेसे अपनी आंखें हटा नहीं सकता; कोई चेतनाधारी मनुष्य एक बार उन्हें देख लेनेके बाद ऐसा नहीं कर सकता।

पलायनका तीसरा रास्ता बल और शक्तिका है। इसके मानी यह

हैं कि जब आदमी समझ ले कि जीवन केवल एक बुराई और निरर्थक-मी वस्तु है तब उसे नष्ट कर दे । कुछ असाधारण रूपसे शक्तिमान और दृढ़ व्यक्ति ही ऐसा करते हैं । अपने साथ जो मज़ाक किया गया है उसकी निरर्थकता समझ लेने और जानेसे मर जाना अच्छा है तथा अस्तित्व न रखना सबसे अच्छा है, यह जान लेनेके बाद वे इस मूर्खतापूर्ण मज़ाकका खात्मा कर देते हैं—क्योंकि खात्मा करनेके साधन भी मौजूद हैं; गलेके चारों ओर रस्सीका फंदा, पानी, कलेजेमें घुसेड़ लेनेके लिए छुरा, रेलपर चलनेवाली गाड़ियां । हममेंसे जो लोग ऐसा करते हैं उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है । इनमेंसे अधिकतर अपने जीवनके सबसे अच्छे कालमें, जब उनके मनकी शक्ति खूब विकसित होती है और मनुष्यके मनको विकृत और पतित करनेवाली आदतें भी उनमें बहुत कम होती हैं, ऐसा करते हैं ।

मैंने देखा कि पलायनका यही सबसे अच्छा उपाय है और मैंने इसे ही ग्रहण करनेकी इच्छा की ।

एक चौथा उपाय और है; पर वह दुर्बलताका उपाय है । मनुष्य परिस्थितिकी सच्चाईको देखते हुए भी जीवनसे चिपटा रहता है—यद्यपि वह पहलेसे ही यह जानता है कि इससे कोई चीज हाथ नहीं आनी है । वह जानता है कि मौत ज़िंदगीसे बेहतर है; पर बुद्धिमत्तापूर्वक आचरण करनेकी, जल्दी इस धोखा-धड़ीको खत्म करने और अपनेको मार डालने की, ताकत न होनेके कारण वह किसी चीज़की प्रतीक्षा करता हुआ मालूम पड़ता है । यह दुर्बलतापूर्ण पलायन है; क्योंकि जब मैं जानता हूँ कि सर्वोत्तम उपाय क्या है और उसे करना मेरे बसकी बात है तब उसे क्यों न किया जाय ?...मैंने अपनेको इसी वर्गमें पाया ।

इन चार उपायोंसे मेरी श्रेणीके मनुष्य भयंकर परस्पर विरुद्ध बातोंसे दूर भागते हैं । मैंने बहुत सोचा-विचारा; पर इन चार उपायोंके अलावा मुझे कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखाई दिया । एक उपाय यह था—जीवन मूर्खतापूर्ण, मिथ्याहंकार और बुराई है और ज़िंदा न रहना बेहतर

हैं, यह ज्ञान ही न हो। पर मैं इस ज्ञानसे रहित न रह सका और जब एक बार यह ज्ञान हो गया तब उससे आखें कैसे बंद कर सकता था ? दूसरा उपाय यह था—बिना भविष्यका विचार किये जैसा भी जीवन है, बिताया जाय। मैं ऐसा भी नहीं कर सकता था। शाक्यमुनिकी तरह जानते हुए कि बुढ़ापा, बीमारी और मौतका अस्तित्व है, मैं सैर-शिकारको नहीं जा सकता था। मेरी कल्पना बड़ी प्रबल थी। मैं उन आकस्मिक क्षणोंमें भी प्रसन्नता नहीं अनुभव कर पाता था जो पलभरके लिए मेरे सामने सुखके टुकड़े फेक देते थे। तीसरा उपाय यह था कि इस बातको समझ लेनेके बाद कि जिंदगी एक बुराई और वेवकूफीसे भरी हुई चीज़ है, अपनेको मारकर उसका खात्मा कर देता। मैं जीवन की व्यर्थता समझता था फिर भी किसी वजहसे आत्महत्या मैंने नहीं की। चौथा उपाय है—सुलेमान और शापनहारकी तरह रहनेका—यह जानते हुए कि जिंदगी हमारे साथ किया गया एक मज़ाक है, जीवन बिताने, नहाने-धोने, खाने-पहनने, बात करने और किताबें लिखनेका। मेरे लिए यह घृणा-जनक और दुखदाई था। लेकिन मैं उस स्थितिमें बना रहा।

आज मैं देखता हूँ कि मैं आत्महत्या नहीं कर सका, इसका कारण अपने विचार भ्रम-पूर्ण होनेकी धुंधली चेतना थी। अपनी तथा विद्वानोंकी वह विचार-प्रणाली चाहे कितनी ही विश्वसनीय और संदेहरहित मालूम पड़ी हो जिसने मुझे जीवनकी व्यर्थता स्वीकार करनेपर विवश किया, पर इस परिणामके औचित्यके संबंधमें मेरे अंदर एक धुंधला संदेह बना ही रहा।

यह संदेह कुछ इस तरहका था : मैं अर्थात् मेरी बुद्धिने मान लिया कि जीवन व्यर्थ है। अगर बुद्धिसे ऊंची कोई चीज़ नहीं है (और है भी नहीं; कोई चीज़ सिद्ध नहीं कर सकती कि इससे ऊंची वस्तु है), तब मेरे लिए बुद्धि ही जीवनकी सृष्टि करनेवाली है। अगर बुद्धिके अस्तित्वका लोप होजाय तो मेरे लिए जीवन भी न रहेगा। पर बुद्धि जीवनसे इंकार कैसे कर सकती है, जब वह स्वयं जीवनकी सृष्टि करनेवाली है ? या इसे

दूसरी तरह कहें : अगर जीवन न होता तो मेरी बुद्धिका अस्तित्व भी न होता, इसलिए बुद्धि जीवनकी संतान है। जीवन ही सब कुछ है। बुद्धि उसका फल है, फिर भी बुद्धि स्वयं जीवनको अस्वीकार करती है। मैंने अनुभव किया कि इसमें कोई-न-कोई गलती है।

मैंने अपनेसे कहा—यह ठीक है कि जीवन एक व्यर्थकी बुराई है। फिर भी मैं जीता रहा हूँ और अब भी जी रहा हूँ; सारी मानव-जाति जीती रही है और जी रही है। यह कैसी बात है? जब जीना असंभव है, तब फिर वह क्या जीती है? क्या सिर्फ मैं और शापनहार ही इतने बुद्धिमान हैं कि जीवनकी व्यर्थता और बुराईका समझते हैं?

जिस तर्कसे जीवनका मिथ्याहंकार सिद्ध होता है वह बहुत कठिन नहीं है और बिल्कुल सीधे-सादे लोग दीर्घकालसे उसे जानते हैं; फिर भी वे जीते रहे हैं और आज भी जी रहे हैं। फिर क्या कारण है कि वे सब जाते रहते हैं और कभी जीवनके औचित्यमें संदेह करनेकी बात नहीं सोचते?

ऋषियोंके विवेकसे पुष्ट मेरे ज्ञानमें मुझे बताया है कि पृथ्वीपर रहनेवाली प्रत्येक वस्तु—शरीरी और अशरीरी—अत्यंत चतुराईके साथ एक व्यवस्था और शृंखलामें पिरोई हुई है, केवल मेरी ही स्थिति हास्यास्पद है। और उन 'मूर्खों'को—विस्तृतजन-समूहको इस बातका कुछ ज्ञान नहीं है कि जगतकी प्रत्येक शरीरी और अशरीरी वस्तुमें किस प्रकारसे एक क्रमका विधान है। फिर भी वे जी रहे हैं और उन्हें मालूम पड़ता है कि उनका जीवन बड़ा बुद्धिमत्तापूर्ण है।

मेरे मनमें विचार उठा कि 'कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं किसी वस्तुको अभीतक न जानता होऊँ? अज्ञान ठीक इसी रूपमें अपना कार्य करता है। वह सदैव ठीक वही बात कहता है जो मैं कह रहा हूँ। जब वह किसी वस्तुको नहीं जानता तब वह यह कहता है कि जो कुछ मैं नहीं जानता वह सब मूर्खतापूर्ण है। स्पष्टतया सारा-का-सारा मानव-समाज युग-युगसे जीता रहा है और आज भी इस तरह जी रहा है मानो उसने

अपने जीवनका अर्थ समझ लिया हो; क्योंकि बिना यह समझे वह जी नहीं सकता; किंतु मैं कहता हूँ कि यह सब जीवन निरर्थक है और मैं जी नहीं सकता ।

‘आत्म-हत्याद्वारा जीवनको समाप्त करनेसे हमें कोई चीज़ नहीं रोकती । तब अपनेको मार डालो और बहस मत करो । यदि जीवन तुम्हें दुखी करता है तो अपनी हत्या करलो ! तुम जीते हो, और फिर भी जीवनके तात्पर्यको समझ नहीं सकते तो इस जीवनका अंत कर दो; और जीवनमें आत्म-वंचना करते तथा उन बातोंको कहते और लिखते हुए न फिरो जिसे तुम स्वयं समझनेमें असमर्थ हो । तुम एक अच्छे समाजमें पैदा हुए हो, जिसमें लोग अपनी स्थितिसे संतुष्ट हैं और जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं । यदि तुम इसे निरानंद और घृणाजनक पाते हो तो इसे छोड़कर चल दो !’

वस्तुतः हमारे-जैसे लोग जो आत्म-हत्याकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, फिर भी आत्म-हत्या करने का निश्चय नहीं कर पाते, अवश्य ही सबसे दुर्बल, अस्थिर और स्पष्ट शब्दोंमें सबसे मूर्ख आदमी हैं और उन मूर्खों की तरह अपनी मूर्खताका प्रदर्शन करते फिरते हैं, जो एक चित्रित पापिनीके विषयमें प्रलाप करते हैं । कारण हमारी बुद्धि और हमारा ज्ञान चाहे कितना ही संदेह-रहित हो; किंतु उसने हमें अपने जीवनका अर्थ समझनेकी शक्ति नहीं दी । परंतु समग्र मानव-जातिके करोड़ों-अरबों लोग अपना जीवन जीते हैं और उन्हें जीवनके अर्थके विषयमें कोई संदेह नहीं रहता ।

अत्यंत प्राचीन कालसे, जिसके बारेमें हमें कुछ भी जानकारी है, जब जीवनका आरंभ हुआ तबसे जगतमें मनुष्य जीवनकी व्यर्थताका तर्क जानते हुए भी जीते रहे हैं—वही तर्क जिसने मुझे जीवनकी निरर्थकता बतलाई है—परन्तु वे जीवनके कुछ अर्थ प्रदान करके जीते रहे हैं ।

जबसे मानव-जीवनका आरंभ हुआ तबसे ही मनुष्योंको जीवनके अर्थका भी पता रहा है और वे वही जीवन बिताते रहे हैं जो आज मेरे

पास आया है। जो कुछ मेरे अंदर और मेरे आसपास है, सब शरीरी और अशरीरी वस्तुएं, उन्हींके जीवन-ज्ञानका परिणाम हैं। विचारकी जिस प्रणालीसे मैं इस जीवनके विषयमें चिंतन करता और उसका निरस्कार करता हूँ, उसका आविष्कार मैंने नहीं बल्कि उन्होंने किया था। यह भी उन्हींकी कृपा है कि मैं पैदा हुआ, पढाया-लिखाया गया और इस प्रकार विकसित हुआ। उन्होंने ही ज़मीन खोदकर लोहेका पता लगाया, उन्होंने ही जंगलोंको काटकर साफ़ करना सिखलाया, गायाँ और घोड़ोंका पालन करना सिखलाया, उन्होंने ही हमें बतलाया कि खेतमें अन्न किस प्रकार बोना चाहिए और हम मिलजुलकर किस प्रकार रह सकते हैं। उन्होंने हमारे जीवनको संगठित किया और मुझे सोचना और बोलना सिखलाया। और मैं, उन्हींकी संतति उन्हींद्वारा पालित-पोषित, उन्हींद्वारा ज्ञान प्राप्त कर और उन्हींके विचारों और शब्दोंका अपने चिंतनमें उपभोग करते हुए, तर्क करता हूँ कि वे मूल्य और निरर्थक थे! तब मैंने अपने मनमें कहा कि 'कहीं-न-कहीं अवश्य कोई गलती हो रही है और मैं कुछ भूल अवश्य कर रहा हूँ।' लेकिन वह गलती कहा है और कृपा है इसका पता मुझे बहुत बादमें चला।

: ८ :

ये सब संदेह, जिन्हें आज मैं थोड़े-बहुत रूपमें प्रकट करनेमें समर्थ हुआ हूँ उस समय व्यक्त नहीं कर सकता था। उस समय तो मैं इतना ही अनुभव करता था कि जीवनके मिथ्याहंकारके संबंधमें मेरे निष्कर्ष तर्ककी दृष्टिसे चाहे कितने ही अनिवार्य जान पड़ते हों और संसारके महान् विचारकोंद्वारा उनको चाहे कितना ही समर्थन प्राप्त हुआ हो, किंतु उनमें कोई-न-कोई गलती अवश्य है। यह गलती स्वयं उस तर्क-प्रणालीमें है अथवा प्रश्नके वक्तव्यमें है, यह मैं नहीं जानता था। मैं इतना ही अनुभव करता था कि जिस नतीजेपर मैं पहुँचा हूँ वह तर्ककी दृष्टिसे

विश्वसनीय है; किंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। ये सब निष्कर्ष मुझे इतना विश्वास नहीं दिला सके कि मैं अपने तर्कके अनुसार आचरण भी करूँ अर्थात् अपनी हत्या कर लूँ। और यदि अपनी हत्या किये बिना ही मैं कहता कि बुद्धिसे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ तो यह एक भूठी बात होती। बुद्धि और तर्क अपना काम कर रहे थे, लेकिन कोई और चीज़ भी अंदर-ही-अंदर क्रियाशील थी, जिसे मैं जीवनकी चेतनाके नामसे ही पुकार सकता हूँ। मेरे अंदर एक शक्ति काम कर रही थी जो विवश मेरा ध्यान इस तरफ खींच रही थी; और यही वह शक्ति थी जिसने मुझे मेरी निराशापूर्ण स्थितिसे उबारा और एक बिल्कुल ही दूसरी दिशामें मेरा मन फेर दिया। इस शक्तिने मुझे इस तथ्यकी ओर ध्यान देनेको मजबूर किया कि मैं और मेरे-जैसे कुछ थोड़े और आदमियों तक ही मानव-जाति सीमित नहीं है और अभीतक मैं मानव-जीवनका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका हूँ।

अपने वर्गके लोगों की संकुचित परिधिमें मैंने देखा कि उनमें ऐसे ही लोग हैं जिन्होंने या तो इस प्रश्नका समझाही नहीं है या यदि समझा भी है तो उसे जीवनके नशेमें भुला दिया है, अथवा समझकर अपने जीवनका अंत कर दिया है, अथवा इसे समझा तो है, किंतु अपनी दुर्बलताके कारण वे अपने निराशापूर्ण जीवनके दिन बिता रहे हैं। इसके सिवा मुझे दूसरे लोग दिखलाई न पड़ते थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि धनवान, शिक्षित और निठल्ले लोगोंके इस संकुचित समाज तक—जिसमें मैं भी शामिल था—ही सारी मनुष्य-जातिका खात्मा हो जाता है, और वे करोड़ों आदमी जो इस छोटे समाजके बाहर रहकर जीवन बिताते रहे हैं और आज भी बिता रहे हैं एक प्रकारके पशु हैं—वे असली आदमी नहीं हैं।

यद्यपि इस समय यह बात अविश्वसनीय रूपसे अचिंत्य मालूम होती है कि मैं जीवनके विषयमें तर्क करते हुए भी अपने चारों ओरके संपूर्ण मानव-जीवनको भूल जाता था और यह समझनेकी भूल कर बैठता था

कि मेरा तथा सुलेमान और शापनहारका जीवन ही सच्चा जीवन है और करोड़ों मनुष्योंका जीवन ध्यान देने लायक नहीं—पर उस समय सचमुच यही बात थी। अपनी बुद्धिके अहंकार और आत्म-वंचनामें मुझे यह बात असंदिग्ध मालूम पड़ती थी कि मैंने एवं सुलेमान और शापनहारने जीवनके इस सवालको ऐसे सच्चे और उचित रूपमें रक्खा है कि उसके अतिरिक्त और कुछ भी संभव नहीं है। यह बात मुझे इतनी असंदिग्ध प्रतीत होती थी कि अपने चारों ओर फैले हुए उन करोड़ों आदमियोंके जीवनके विषयमें कभी मेरे मनमें एक बार भी यह प्रश्न नहीं उत्पन्न हुआ कि 'जो कोटि-कोटि व्यक्ति दुनियामें जीते रहे हैं और जी रहे हैं उन्होंने अपने जीवन का क्या अर्थ समझा था तथा समझा है?'

मैं बहुत दिनोंतक पागलपनकी इस अवस्थामें रहा जो हम अत्यंत उदार और सुशिक्षित आदमियोंका औसत स्वभाव प्रकट करती है। किंतु सच्चे श्रमिकोंके लिए मेरे हृदयमें जो स्नेह है, उसने मुझे उनकी ओर ध्यान देने और यह समझनेके लिए विवश किया कि वे उतने मूर्ख नहीं हैं जितना हमने मान रक्खा है। इस वृत्तिके कारण अथवा अपने विश्वासकी इस सच्चाईके कारण कि अपनी हत्या कर देनेके अतिरिक्त मैं और कुछ जाननेमें असमर्थ हूँ, मैंने आंतरिक प्रेरणावश यह अनुभव किया कि यदि मैं जीना और जीवनका अर्थ समझना चाहता हूँ तो मुझे उन लोगोंमें इसकी खोज नहीं करनी चाहिए जिन्होंने इसे खो दिया है अथवा जो अपनी हत्या करना चाहते हैं, बल्कि भूत और वर्तमान कालके उन करोड़ों आदमियोंमें उसकी खोज करनी चाहिए जो जीवनका निर्माण करते हैं और जो न केवल अपनी जिंदगीका बोझ उठाते हैं, बल्कि हमारे जीवनका बोझ भी अपने कंधों पर ले लेते हैं! तब मैंने उन बहु-संख्यक सरल, अशिक्षित और गरीब लोगोंके जीवनपर विचार करना आरंभ किया जो जीवन जी चुके हैं अथवा आज भी जी रहे हैं। मैंने एक झिलकुल ही नई बात देखी। मैंने देखा कि थोड़ेसे अपवादोंको छोड़कर ये करोड़ों आदमी जो जीवन जी चुके अथवा जी रहे हैं, मेरी पूर्व-निश्चित

श्रेणियोंमें नहीं बांटे जा सकते। मैं उन्हें न तो उन आदमियोंकी श्रेणीमें रख सकता हूँ, जो प्रश्नको नहीं समझते; क्योंकि वे स्वयं उसे उपस्थित करते हैं और असाधारण स्पष्टताके साथ उसका उत्तर देते हैं। मैं उन्हें विषयासक्त भी नहीं मान सकता; क्योंकि उनके जीवनमें सुख-भोग की अपेक्षा दुःख-कष्ट भोग ही अधिक है। इनकी गिनती मैं उन लोगोंमें तो कर ही नहीं सकता जो अविवेकपूर्वक अपने अर्थहीन जीवनका भार ढो रहे हैं, क्योंकि वे अपने जीवनके हर एक काम, और मौततककी व्याख्या कर लेते हैं। आत्म-हत्याका वे सबसे बड़ा पाप समझते हैं। तब मुझपर यह प्रकट हुआ कि सारी मानव-जातिको जीवनके अर्थका ज्ञान था, पर जिसे मैं स्वीकार न करता था और उससे घृणा करता था। मुझे यह भी मालूम पड़ा कि तार्किक ज्ञान जीवनका अर्थ बतानेमें असमर्थ है; वह जीवनको बहिष्कृत करता है। उधर करोड़ों आदमी—सारा मनुष्य-समाज—जीवनका जो अर्थ लगाते हैं वह एक प्रकारके तिरस्कृत मिथ्या ज्ञानपर आश्रित है।

पंडितों और विद्वानोंका तर्कसम्मत ज्ञान जीवनका कोई अर्थ अस्वीकार करता है, परंतु मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्या, करीब-करीब सारी मनुष्य-जाति, इस अर्थको अतार्किक ज्ञानमें प्राप्त करती है। और यह अतार्किक ज्ञान ही श्रद्धा है—वह वस्तु जिसे मैं अस्वीकार किये बिना रह नहीं सकता था। यह ईश्वर है, यह त्रिमूर्तिमें एक है, यह लुः दिनोंमें सृष्टि करनेके समान है। पर इन सब बातोंको मैं उम वक्त तक स्वीकार नहीं कर सकता जबतक मुझमें बुद्धि है।

मेरी स्थिति बड़ी भयंकर थी। मैं जान चुका था कि तार्किक ज्ञानके मार्ग पर चलकर तो मैं जीवनकी अस्वीकृतिके सिवाय कुछ और प्राप्त नहीं कर सकता; और उधर श्रद्धाके पक्षमें बुद्धिकी अस्वीकृतिके सिवा दूसरी कोई बात नहीं थी जो मेरे लिए जीवनकी अस्वीकृतिकी अपेक्षा कहीं असंभव थी। तार्किक ज्ञानसे तो यह प्रकट होता था कि जीवन एक बुराई है, और लोग इसे जानते हैं कि न जीना स्वयं उन्हींपर निर्भर है;

फिर भी उन्होंने अपने जीवनके दिन पूरे किये और आज भी वे जी रहे हैं। स्वयं मैं जी रहा हूँ, यद्यपि बहुत दिनोंसे मुझे इस बातका ज्ञान है कि जीवन अर्थहीन और एक दूषण है। श्रद्धाद्वारा यह प्रकट होता है कि जीवनका अर्थ समझनेके लिए मुझे अपनी बुद्धिका तिरस्कार करना चाहिए—उसी वस्तुका जिसके लिए 'जीवनका अर्थ जाननेकी आवश्यकता है।

— : ६ :

इस प्रकार जो संघर्ष और परस्पर-विरोधी स्थिति पैदा हुई उससे निकलनेके दो मार्ग थे। या तो यह कि जिसे मैं बुद्धि कहता हूँ वह इतनी तर्क-संगत नहीं है जितनी मैं माने बैठा हूँ; अथवा यह कि जिसे मैं अद्वै-द्विक और अतार्किक समझता हूँ वह इतना अद्वैदिक और तर्क-विरोधी नहीं है जितना मैं समझता हूँ। तब मैं अपने तार्किक ज्ञानकी तर्क-प्रणालीपर विचार और उसकी छान-बीन करने लगा।

अपने द्वैदिक ज्ञानकी तर्क-प्रणालीपर विचार करनेपर मुझे वह चिल्कुल ठीक मालूम हुई। यह निष्कर्ष अनिवार्य था कि जीवन शून्यवत् है; किंतु मुझे एक भूल दिग्गलाई पड़ी। भूल यह थी कि मेरा तर्क उस प्रश्नके अनुरूप नहीं था जो मैंने उपस्थित किया था। प्रश्न था—'मैं क्यों जीऊँ अर्थात् मेरे इस स्वप्नवत् क्षणिक जीवनसे क्या वास्तविक और स्थायी परिणाम निकलेगा; इस असीम जगतमें मेरे सीमित अस्तित्वका प्रयोजन क्या है?' इसी प्रश्नका जवाब देनेके लिए मैंने जीवनका अध्ययन किया था।

जीवनके सब संभव प्रश्नोंके हल मुझे संतुष्ट न कर सके; क्योंकि मेरा सवाल यद्यपि यों देखनेमें सीधा-सादा था; परंतु इसमें सीमित वस्तुको असीमके रूपमें और असीमको सीमित वस्तुके रूपमें समझनेकी मांग भी शामिल थी।

मैंने पूछा—‘काल, कारण और आकाशके बाहर मेरे जीवनका क्या अर्थ है?’ और मैंने इस प्रश्नका यों उत्तर दिया—‘काल, कारण और आकाशके भीतर मेरे जीवनका क्या अर्थ है?’ बहुत सोच-विचारके बाद मैं यही उत्तर दे सका कि कुछ नहीं।

अपने तर्कोंमें मैं बराबर सीमितकी सीमितके साथ और असीमकी असीमके साथ तुलना करता रहा। इसके सिवा और मैं कर ही क्या सकता था? इसी तर्कके कारण मैं इस अनिवार्य निष्कपपर पहुंचा—शक्ति शक्ति है, पदार्थ पदार्थ है, संकल्प संकल्प है, असीम असीम है, शून्य शून्य है—इस रीतिसे इसी परिणाम पर पहुंचना संभव था।

यह बात कुछ वैसी ही थी जैसी गणितके क्षेत्रमें उस समय होती है जब हम किसी समीकरणको हल करनेका विचार करते हुए यह देखते हैं कि हम समान संख्याओंको ही हल कर रहे हैं। यह तर्क-प्रणाली तो ठीक है; लेकिन उत्तरमें इसका परिणाम यह निकलता है कि ‘क’ ‘क’ के बराबर है या ‘ख’ ‘ख’ के बराबर है या ‘ग’ ‘ग’ के बराबर है। अपने जीवनके अर्थवाले प्रश्नके विषयमें तर्क करते समय भी मेरे साथ यही बात हुई। सब प्रकारके विज्ञानोंद्वारा इस प्रश्नका एक ही उत्तर मिला।

और सच तो यह है कि शुद्ध वैज्ञानिक ज्ञान—वह ज्ञान जो डिक्टेन्की भांति प्रत्येक वस्तुके विषयमें पूर्ण संदेहके साथ शुरू होता है, श्रद्धाद्वारा स्वीकृत सब प्रकारका ज्ञान अस्वीकार करता है और प्रत्येक वस्तुका बुद्धि, तर्क और अनुभवके नियमोंके आधारपर नवीन रूपसे निर्माण करता है, और जीवनके प्रश्नके विषयमें उनके अलावा और कोई जवाब नहीं दे सकता जो मैं पहले ही प्राप्त कर चुका था अर्थात् एक अनिश्चित उत्तर। शुरू-शुरूमें तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि विज्ञानने मुझे एक निश्चयात्मक उत्तर दिया है—वह उत्तर जो शापेनहारने दिया था यानी जीवनका कोई अर्थ नहीं है और यह एक बुराई है। किंतु इस विषयकी भली-भांति परीक्षा करने पर मैंने देखा कि यह उत्तर निश्चयात्मक नहीं है। केवल मेरी अनुभूतिने उसे इस रूपमें प्रकट किया है। ठीक-तौरसे उसे

व्यक्त किया जाय—जैसा कि ब्राह्मणों, सुलेमान और शापनहारने व्यक्त किया है— तो जवाब अनिश्चित अथवा एक-सा मिलता है—वही 'क' चराचर 'क' अथवा जीवन कुलु नहीं है। इम प्रकार यह दार्शनिक ज्ञान किसी वस्तुको अस्वीकार तो नहीं करता; किंतु यह उत्तर देता है कि यह प्रश्न हल करना उमकी शक्तिके बाहर है और उसके लिए हल अनिश्चित ही रहेगा।

इसे समझ चुकनेके बाद मैंने यह देखा कि तार्किक ज्ञानके द्वारा अपने प्रश्नका कोई उत्तर खोज निकालना संभव नहीं है, और तार्किक ज्ञानके द्वारा मिलनेवाला उत्तर केवल इस बातका सूत्रक है कि इस प्रश्नका उत्तर प्रश्नके एक भिन्न वक्तव्यकेद्वारा, और तभी प्राप्त हो सकता है जब उममें असीमके साथ ससीमका संबंध शामिल कर लिया जाय। और मैंने समझा कि श्रद्धा एवं विश्वासद्वारा मिलनेवाला उत्तर चाहे कितना ही तर्कहीन और विकृत हो, किंतु उसमें ससीमके साथ असीमके संबंधकी भूमिका होती है जिसके बिना कोई हल संभव नहीं है।

मैंने जिस रूपमें भी इस सवाल को रक्खा; यह असीम और ससीमके बीचका संबंध उत्तरमें अवश्य प्रतिध्वनित हुआ। मुझे किस प्रकार रहना चाहिए ? ईश्वरीय नियमोंके अनुसार। मेरे जीवनसे क्या वास्तविक परिणाम निकलेगा ? अनंत कष्ट वा अनंत आनंद। जीवनमें जीवनका वह कौन-सा अर्थ है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं करती ?—अनंत प्रभुके साथ संमिलन-स्वर्ग।

इस प्रकार उस तार्किक या बौद्धिक ज्ञानके अलावा, जिसे मैं ज्ञानकी इति समझता था, अनिवार्य रूपसे मुझे स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पड़ा कि समस्त जीवित मानवताके पास एक दूसरे प्रकारका ज्ञान—अतार्किक ज्ञान—भी है जिसे श्रद्धा कहते हैं और जो मनुष्यका जीना संभव करती है। अब भी यह श्रद्धा मेरे लिए उसी प्रकार अबौद्धिक है जैसे यह पहले प्रतीत होती थी, पर अब मैं यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि सिर्फ इसीके जरिये मनुष्य-जातिको जीवनके इस प्रश्नका

उत्तर मिल सकता है और इसलिए इसीके कारण जीवन संभव है। ज्ञानने हमें यह स्वीकार करनेको विवश किया था कि जीवन अर्थहीन है। उसकी वजहसे मेरी ज़िंदगीमें एक रुकावट पैदा हो गई थी और मैं अपना अंत कर देना चाहता था। पर, इसी बीच मैंने अपने चारों तरफ फंली मनुष्य-जातिपर निगाह डाली और देखा कि लोग जीते हैं और घोषित भी करते हैं कि उनको जीवनका अर्थ मालूम है। मैंने अपनी तरफ देखा। मैंने तभीतक अपने अंदर जीवन-प्रवाहका अनुभव किया था जबतक मुझे जीवनके किसी अर्थका ज्ञान था। इस तरह न सिर्फ दूसरोके लिए, बल्कि मेरे लिए भी श्रद्धाने जीवन सार्थक कर दिया और जीना संभव हुआ।

जब मैंने दूसरे देशोंके लोगों, अपने समकालिकों और उनके पूर्वजों, पर ध्यान दिया तो वहां भी मुझे यही बात दिखाई पड़ी। जवसे पृथ्वीपर मनुष्यका जन्म हुआ तवसे जहां-कहीं भी जीवन है मनुष्य इस श्रद्धाके कारण ही जी सका है और इस श्रद्धाकी प्रधान रूप-रेखा सब जगह मिलती है और सदा एक रहती है।

श्रद्धा चाहे कुछ हो, वह चाहे जो उत्तर देती हो और चाहे जिन्हें वह उत्तर दे; पर उसका प्रत्येक उत्तर मनुष्यके सीमित अस्तित्वको एक अर्थ प्रदान करता है—वह अर्थ जिसका कष्ट, विपत्ति और मृत्युसे अंत नहीं होता। इसका मतलब यह है कि सिर्फ श्रद्धामें ही हम जीवनके लिए एक अर्थ और एक संभावना प्राप्त कर सकते हैं। तब, यह श्रद्धा क्या है? विचार करके मैंने समझा कि श्रद्धा 'अदृश्यकी सान्नी' मात्र नहीं है, सिर्फ दैवी प्रेरणा ही नहीं है (इससे श्रद्धाका एक निर्देश-मात्र होता है), सिर्फ ईश्वरके साथ मनुष्यका संबंध ही नहीं है (पहले आदामी-को श्रद्धाकी और फिर ईश्वरकी परिभाषा करनी पड़ती है, ईश्वरके द्वारा श्रद्धाकी नहीं); यह सिर्फ उन बातोंको मान लेना ही नहीं है जो बताई गई हों (यद्यपि श्रद्धाका आमतौर पर यही मतलब लिया जाता है); श्रद्धा तो मानव-जीवनके प्रयोजनका वह ज्ञान है जिसके फलस्वरूप मनुष्य

अपना नाश नहीं करता; बल्कि जीता है। श्रद्धा जीवनका बल है। अगर कोई आदमी जीता है तो वह किसी-न-किसी वस्तुमें श्रद्धा रखता है। यदि उसमें श्रद्धा नहीं है कि किसी चीज़के लिए उसे जीना चाहिए तो वह जी न सकेगा। यदि वह ससामीकी मिथ्या प्रकृतिको नहीं देख और पहचान पाता तो वह ससीममें विश्वास करता है; यदि वह ससीमकी मिथ्या प्रकृतिको समझ लेता है तो फिर उसके लिए असीममें विश्वास रखना जरूरी है। बिना श्रद्धाके तो वह जी ही नहीं सकता।

मैंने अपने इतने दिनोंतकके सारे मानसिक श्रमका स्मरण किया और काप उठा। अब मेरे सामने यह बात साफ हो गई थी कि अगर आदमीको जीना है तो उसे या तो असामीकी तरफसे आवेग मंद लेनी पड़ेगी या फिर जीवनके प्रयोजनकी ऐसी व्याख्या स्वीकार करनी पड़ेगी जिससे ससीम और असीमके बीच संबंध स्थापित हो सके। ऐसी व्याख्या पहले भी मेरे सामने थी; परंतु जबतक मैं ससीममें विश्वास रखता रहा तबतक मुझे इस व्याख्याकी आवश्यकता ही न थी, और मैं तर्ककी कसौटीपर कसकर उसकी परख करने लगा। तर्कके प्रकाशमें मेरी पहलेकी संपूर्ण व्याख्या टुकड़-टुकड़ हो गई। पर एक वक्त ऐसा आया कि ससीममेंसे मेरा विश्वास उठ गया। तब मैं जो कुछ जानता था उसके सहारे एक बौद्धिक आधारका निर्माण करने लगा—एक ऐसी व्याख्याकी योजनामें लगा जो जीवनको एक अर्थ, एक तात्पर्य प्रदान कर सके; लेकिन मैं कुछ भी न बना पाया। दुनियाके सर्वोच्च मस्तिष्कोंकी तरह मैं भी इसी नतीजेपर पहुंचा कि 'क' 'क'के बराबर है। मुझे इस नतीजेपर बड़ा आश्चर्य हुआ, यद्यपि इसके सिवा दूसरा कोई नतीजा निकल ही न सकता था।

जब मैंने प्रयोगात्मक विज्ञानोंमें जीवनके सवालका जवाब ढूंढना शुरू किया तब मैं कर क्या रहा था ? मैं जानना चाहता था कि मैं क्यों जीता हूँ, और इसके लिए मैंने उन सब चीज़ोंका अध्ययन किया जो मेरे

बाहर हैं। इसमें शक नहीं कि मैंने बहुत-सी बातें सीखीं; पर जिस चीज़की मुझे ज़रूरत थी, वह न मिली।

जब मैंने दार्शनिक विज्ञानोंमें जीवनके सवालका जवाब ढूंढा तब मैं क्या कर रहा था ? मैं उन लोगोंके विचारोंका अध्ययन कर रहा था जिन्होंने अपनेको मेरी ही स्थितिमें पाया था और जो इस सवालका— 'मैं क्यों जाता हूँ'—कोई जवाब न पा सके थे। इस खोजमें मैं उससे ज्यादा कुछ न जान सका जो मैं खुद जानता था—यानी यह बात कि कुछ भी जाना नहीं जा सकता।

मैं क्या हूँ ? अनंतका एक अंश। इन थोड़े शब्दोंमें सारी समस्या निहित है।

क्या यह मुमकिन है कि मनुष्यने अपनेसे यह प्रश्न करना सिर्फ कल शुरू किया है ? क्या मुझसे पहले किसीने इस प्रश्नको हल करनेकी कोशिश ही नहीं की ? यह प्रश्न जो इतना सीधा है और हर एक बुद्धिमान बच्चे की ज़बानपर उटता है।

निस्संदेह यह प्रश्न उस ज़मानेसे पूछा जाता रहा है जबसे इंसानकी शुरुआत हुई। और इंसानकी शुरुआतसे ही इस प्रश्नके हलके बारेमें यह बात भी उतनी ही साफ़ रही है कि ससीमसे ससीम और असीमसे असीमकी तुलना इस कामके लिए अपर्याप्त है। इसी तरहसे मनुष्यके आरंभ कालसे ससीम असीमके बीचके संबंधकी खोज लोग करते रहे हैं और उसे उन्होंने व्यक्त भी किया है।

इन सब धारणाओंको, जिनमें ससीमका मेल असीमके साथ बँटाया गया है और जीवनके प्रयोजनकी प्राप्ति की गई है : यानी ईश्वरकी धारणा, संकल्प शक्तिकी धारणा, पुण्यकी धारणा, हम तर्ककी कसौटीपर परखते हैं। और ये सब धारणाएँ बुद्धिकी आलोचनाका सामना करनेमें अक्षम रहती हैं।

अगर यह बात इतनी भयंकर न होती तो जिस अहंकार और आत्म-तुष्टिके साथ हम बच्चोंकी तरह घड़ीके पुजे-पुजे अलग कर देने और स्प्रिंग

या कमानिको निकालकर उसका खिलौना बना लेनेके बाद इस बातपर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि घड़ी चल क्यों नहीं रही है, वह अत्यंत असंगत और भर्ही मालूम पड़ती ।

सर्साम और असीमके बीच परस्पर-विरोध का हल, और जीवनके प्रश्नका ऐसा उत्तर, जो उसका जीना संभव कर सकें, आवश्यक और बहुमूल्य है । और यही एक हल है जिसे हम हर जगह, हर वक्त और सब तरहके लोगोंमें पा सकते हैं : यह हल, जो मानव-जीवनके आदिम युगसे चला आ रहा है; यह हल, जो इतना कठिन है कि हम इसके-जैसा दूसरा कोई हल निर्माण करनेमें असमर्थ हैं ।— और इस हलको हम बड़े हलकंपनके साथ ग्वत्म कर देते हैं, इसलिए कि फिर वही सवाल खड़ा कर सकें जो हर एकके लिए स्वाभाविक है और जिसका हमारे पास कोई जवाब नहीं है ।

अनंत ईश्वर, आत्माकी दिव्यता, ईश्वरसे मानवीय बातोंका संबंध, आत्माका ऐक्य और अस्तित्व, नैतिक पाप-पुण्यकी मानवीय धारणा— ये सब ऐसी धारणाएं हैं जो मानवीय चिंतनकी प्रच्छन्न असीमतामें निर्मित होती हैं—ये वे धारणाएं हैं जिनके बिना न जीवन और न मेरा अस्तित्व संभव है । फिर भी संपूर्ण मानव-जातिके उस सारे श्रमका तिरस्कार करके मैं उसे नये सिरेसे और अपने मनमाने ढंगपर बनाना चाहता था ।

यह ठीक है कि उस वक्त मैं इस तरह सोचता नहीं था, पर इन विचारोंके अंकुर तो मेरे अंदर आ ही चुके थे । सबसे पहले तो मैंने यह समझा कि शापनहार और सुलेमानका साथ देनेकी मेरी बात मूर्खतापूर्ण है : हम देखते हैं कि जीवन एक बुराई है, फिर भी हम जीते रहते हैं । यह स्पष्टतः मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि अगर जीवन निरर्थक है और मैं सिर्फ जो कुछ सार्थक है उसीका भक्त हूँ तो मुझे जीवनका अंत कर देना चाहिए और तब कोई इसे चुनौती देनेवाला न होगा । दूसरी बात मैंने यह अनुभव की कि हमारे सारे तर्क धुरी और दांतेसे अलग हो जानेवाले

पहियेकी भांति एक भ्रमपूर्ण वृत्तमें ही घूम रहे हैं। चाहे हम कितना ही और कैसी भी अच्छी तरहसे तर्क करे, हमें उस सवालका जवाब नहीं मिल सकता। वहां तो सदा 'क' 'क' के बराबर ही रहेगा, इसलिए संभवतः हमारा यह मार्ग गलत है ! तीसरी बात जो मेरी समझमें आने लगी, यह थी कि श्रद्धाने इस प्रश्नके जो उत्तर दिये हैं उनमें गंभीरतम मानव-ज्ञान एवं विवेक संचित है और यह कि मुझे तकके नामपर इनको इन्कार करनेका कोई अधिकार नहीं था, और वे ही ऐसे उत्तर हैं जो जीवनके प्रश्नका जवाब दे पाते हैं।

: १० :

मैंने इसे समझ तो लिया, पर इससे मेरी स्थिति कुछ ज़्यादा अच्छी नहीं हुई। अब मैं ऐसे हर एक विश्वासको स्वीकार कर लेनेको तैयार था जिसमें बुद्धिका सीधा तिरस्कार न होता हो—क्योंकि वैसा होनेपर तो वह असत्य हो जाता है। मैंने पुस्तकोंके सहारे बौद्ध-धर्म और इस्लामका अध्ययन किया; सबसे अधिक मैंने पुस्तकों और अपने आस-पासके लोगोंसे ईसाई-धर्मका अध्ययन किया।

स्वभावतः पहले मैं अपनी मंडलीके कट्टरमतावलंबियों यानी उन लोगोंकी तरफ झुका जो विद्वान थे—मैं गिजोंके धर्मशास्त्रवेत्ताओं, पादरियों तथा इवैजेलिकलों (जो ईसाद्वारा विश्वके मुक्तिदानके सिद्धांतमें विश्वास रखते हैं) की तरफ झुका। मैंने इन आस्तिकोंसे उनके विश्वासोंके बारेमें सवाल किये और यह भी पूछा कि वे जीवनका क्या प्रयोजन समझते हैं ?

यद्यपि मैंने उनको हर तरहकी छूट दी और हर तरहसे विवाद बचानेकी कोशिश की; फिर भी मैं इन लोगोंके धर्मको स्वीकार न कर सका। मैंने देखा कि वे जिन बातोंको अपना धर्म बताते हैं उनके सहारे जीवनका प्रयोजन स्पष्ट होनेकी जगह उलटा धुंधला हो जाता है। और वे

स्वयं अपने विश्वासोंसे कुछ इसलिए नहीं चिपके हुए हैं कि जीवनके उस प्रश्नका उत्तर दे सकें, जिसने मुझे श्रद्धातक पहुंचाया, बल्कि कुछ दूसरे ही उद्देश्योंके कारण उनका ग्रहण किये हुए हैं जो मेरे प्रतिकूल हैं ।

मुझे याद है कि इन लोगोंके संसर्गमें बार-बार आशान्वित होनेके बाद मुझे भय होने लगा कि कहीं मैं फिर निराशाके पूर्ववर्ती गर्तमें न गिर जाऊं ।

वे लोग जितनी ही पूर्णताके साथ अपने सिद्धांत मुझे समझाने, उतनी ही स्पष्टताके साथ मुझे उनकी गलतियां नज़र आतीं । मैं अनुभव करने लगा कि उनके विश्वासोंमें जीवनके प्रयोजनकी व्याख्याकी ग्योज करना व्यर्थ है ।

यद्यपि वे अपने सिद्धांतोंमें ईसाई-धर्मके सत्यांके साथ बहुतेरी अनावश्यक और अनुचित बातें मिला देते थे, पर इसके कारण मेरे मनमें उनके प्रति विरोध नहीं पैदा होता था । उनकी तरफसे मन उच्चटता और भागता इसलिए था कि इन लोगोंका जीवन भी मेरी ही तरह था । अंतर केवल इतना था कि वे अपनी शिक्षाओं और उपदेशोंमें जिन सिद्धांतोंका प्रतिपादन करते थे, उनका दर्शन उनके जीवनमें नहीं होता था । मैंने साफ-साफ अनुभव किया कि वे अपनेको धोखा दे रहे हैं और मेरी तरह ही वे जीवनका इससे ज्यादा कुछ तात्पर्य नहीं समझते कि जबतक जिंदगी है तबतक जिंथा और जां कुछ मिले उपभोग करो । अगर उनको जीवनके ऐसे प्रयोजन का ज्ञान होता जो क्षति, दुःख और मृत्युका भय नष्ट कर देता है तो फिर वे इन चीज़ोंसे इतने डरते न होते । पर मेरी श्रेणीके ये आस्तिक, ठीक मेरी ही तरह, वैभव और संपन्नताके बीच रहते हुए, उनकी वृद्धि अथवा रक्षा करनेका प्रयत्न करते थे । वे भी विपत्ति, पीड़ा और मृत्युके भयसे पीड़ित थे और मेरी तरह या हम-जैसे अन्य नास्तिकोंकी तरह ही वे अपनी वासनाओं एवं आका-

क्षात्रोंकी पूर्तिके लिए जीते थे—वे उतनी ही बुरी तरह जीवन व्यतीत करते थे जिस तरह नास्तिक करते हैं ।

कोई तर्क मुझे उनके विश्वासकी सच्चाईमें यकीन नहीं दिला सकता था । यदि उनके आचरणमें भी गारोबी, बीमारी और मौतका वह भय न दिखाई पड़ता जो मुझमें था, तो मैं मानता कि वे जीवनका कुछ अर्थ समझते हैं । मुझे अपनी श्रेणीके आस्तिकोंके आचरणमें ऐसा दिखाई नहीं पड़ा । इसके विपरीत मैंने उन लोगोंको इस तरहका आचरण करते देखा, जो ज़बर्दस्त नास्तिक थे*; आस्तिकोंमें कहीं वैसा आचरण दिखाई नहीं पड़ा ।

तब मैंने समझा कि मैं उस श्रद्धाकी खोज नहीं कर रहा हूँ जो इन लोगोंके विश्वासोंमें निहित है और यह कि उनका विश्वास कोई सच्चा विश्वास नहीं है, बल्कि जीवनकी एक इन्द्रियासक्त आत्म-तुष्टि मात्र है ।

मैंने समझ लिया कि इस तरहकी श्रद्धा चाहे अनुतापयुक्त सुलेमान को उसकी मृत्युशय्यापर, यदि शांति नहीं तो कम-से-कम कुछ भुलावा दे सके, पर यह उन करोड़ों मनुष्योंकी कोई सेवा नहीं कर सकती जिनका काम दूसरोंकी मेहनतपर मौज उड़ाना नहीं, बल्कि जीवनकी सृष्टि करना है ।

* टॉल्स्टॉय का यह वाक्य बड़ा महत्वपूर्ण है; क्योंकि उन्होंने इस ज़मानेमें क्रांतिकारी या 'जनताकी ओर लौटो' आंदोलनका बहुत ही कम जगहों में जिक्र किया है । इस आंदोलनमें बहुतेरे युवक-युवतियोंने अपने गृह, संपत्ति और जीवनतकका बलिदान किया था । टॉल्स्टॉय और इन क्रांतिकारियों के विचारोंमें समानता थी और दोनों किसी-न-किसी रूपमें मानते थे कि समाजके ऊपरी तलके लोग या उच्चवर्ग परान्नभोगी हैं और उन लोगोंका ही खून चूस रहे हैं जो उनका बोझ अपने कंधों पर उठाये हुए हैं ।—सं०

अगर संपूर्ण मानव-जातिको जीनेके लिए समर्थ बनाना है और अगर हम चाहते हैं कि वे जीवनका प्रयोजन समझते हुए जीवन वितायें तो इसके लिए इन करोड़ों आदमियोंको श्रद्धा का एक दूसरा ही रूप, सच्चा रूप समझना चाहिए। वस्तुतः शापनहार और सुलेमानके साथ ही मैंने भी जो अपने जीवनका अंत नहीं किया तो कुछ उससे मुझे श्रद्धाके अस्तित्वमें विश्वास नहीं हुआ; श्रद्धाके अस्तित्वमें विश्वास तो मुझे यह देवकर हुआ कि ये करोड़ों आदमी जाते रहे हैं और जी रहे हैं और उनकी जीवन-धारामें सुलेमान और हम-जैसे लोग बहते रहे हैं।

तब मैं दीन-हीन, सीधे-सादे और अशिक्षित आस्तिकों यानी तीर्थ-यात्रियों, पुरोहितों, संप्रदायवादियों और किसानोंके नज़दीक खिंचने लगा। ये मामूली आदमी भी उसी ईसाई-धर्मको मानते थे जिसको माननेका दावा हमारे दायरेके कृत्रिम आस्तिक लोग करते थे। इन आदमियोंमें भी मैंने देखा कि ईसाई सत्योंके साथ बहुतेरे अंध-विश्वासोंको मिला दिया गया है; लेकिन दोनोंमें फर्क यह था कि हमारे वर्गके आस्तिकोंके लिए तो ये अंध-विश्वास सर्वथा अनावश्यक थे और वे उनके जीवनसे मेल न खाते थे—वे एक तरहकी विषयासक्तिके झुकावके द्योतक थे; पर श्रमिक लोगोंके बीच प्रचलित अंध-विश्वास उनके जीवनके अनुरूप थे और उनका उनके जीवनसे कुछ ऐसा मेल बैठता था कि उन अंध-विश्वासोंके बिना उनके जीवनकी कल्पना ही न की जा सकती थी—वे उनके जीवनकी एक ज़रूरी शर्त थे। हमारे वर्ग दायरेके आस्तिकोंका सारा जीवन उनके विश्वासोंके प्रतिकूल था; पर श्रमिक आस्तिकों की सारी ज़िंदगी जीवनके उस अर्थको दृढ़ और पुष्ट करती थी जो वे श्रद्धासे प्राप्त करते थे। इसलिए मैं इन साधारण लोगोंके जीवन और विश्वासपर अच्छी तरह ध्यान देने लगा और जितना ही मैं इसपर विचार करता, उतना ही मेरा विश्वास पक्का होता जाता था कि उनके पास सच्ची श्रद्धा है—ऐसी श्रद्धा जिसकी उनको ज़रूरत है और जो उनके जीवनको सार्थक करती और उनका जीना संभव बनाती है। हमारे वर्गमें जहां श्रद्धा-रहित जीवन

संभव है और हज़ारमें मुश्किलसे एक आदमी अपने को आस्तिक कहता है, तहां उनमें मुश्किलसे हज़ारमें एक नास्तिक मिलेगा। मैंने अपने वर्गमें देखा था कि लोगोंका सारा जीवन बेकारी, सुस्ती, राग-रंग और असंतोषमें बीतता है, पर इसके विपरीत इन साधारण आदमियोंमें मैंने यह देखा कि उनका जीवन घोर श्रममें बीतता है, और वे अपने जीवनसे संतुष्ट हैं। हमारे वर्गके लोग दुःख व कष्ट पड़नेपर भाग्यका विरोध करते और उसे कोसते हैं, परंतु इसके विपरीत ये लोग बीमारी और दुःखको बिना किसी व्यग्रता, बगैर किसी परेशानी व विरोधके तथा इस शांत एवं दृढ़ विश्वासके साथ स्वीकार कर लेते हैं कि जो होता है सब अच्छा ही है। हममें जो जितना ही चतुर और बुद्धिमान है, वह उतना ही जीवनका प्रयोजन कम समझता है और जीवनके दुःखों और मृत्युमें एक कूट व्यंग देगता है, परंतु इसके विपरीत ये साधारण आदमी जीते हैं और दुःख भी भोगते हैं; वे मृत्यु और कष्टको शांति एवं स्थिरतापूर्वक, और अधिकांशतया ढँसी-खुशीके साथ ग्रहण करते हैं। हमारे वर्ग दायरे में शांतिपूर्ण मृत्यु, भय और गिराशासे रहित मृत्यु, दुर्लभ अपवाद है, परंतु इसके विपरीत इन लोगों में चिंतापूर्ण, छुटपटाहटसे भरी हुई और दुःखपूर्ण मृत्यु बहुत ही कम देखी जाती है। और ऐसे लोगोंसे दुनिया भरी पड़ी है, जिनके पास उन सब वस्तुओंका सर्वथा अभाव है जो हमारे लिए या सुलेमानके लिए जीवनकी सबसे बड़ी अच्छाई हैं, फिर भी वे अत्यधिक आनंदका अनुभव करते हैं। मैंने अपने आम-पास और दूरतक देखा। मैंने बीते हुए युगके और आजकलके असंख्य लोगोंके जीवन पर ध्यान दिया। इनमें जीवनका अर्थ समझनेवाले और जीने एवं मरनेमें समर्थ एक-दो या दस-बीस नहीं, बल्कि सैकड़ों, हज़ारों, लाखों और करोड़ों मनुष्य मुझे दिखाई पड़े। और यद्यपि उनमें भिन्न-भिन्न रंग-ढंग, आचार-व्यवहार, मन, शिक्षा और स्थितिके आदमी थे, फिर भी मेरे अज्ञानके सर्वथा प्रतिकूल वे सब जीवन और मृत्युका अर्थ समझते थे तथा अभाव एवं दुःख-कष्ट सहते हुए शांतिपूर्वक काम करते,

जीते तथा मरते थे—उनको इनमें मिथ्याहंकार नहीं, बल्कि कुछ अच्छाई दिखाई देती थी ।

मैंने इन आदमियोंसे प्रेम करना सीखा । जितनी ही मुझे उन लोगोंके जीवनकी जानकारी होती गई—उन लोगोंके जीवनकी जो जी रहे हैं तथा उनकी भी जो मर चुके हैं, पर उनके बारेमें मैंने पढ़कर या सुनकर जानकारी हासिल की है—उतना ही उनके लिए मेरा प्रेम बढ़ता गया और मेरे लिए जीना आसान होता गया । लगभग दो वर्षोंतक मेरी यह हालत रही और इस बीच मेरे अंदर एक भारी परिवर्तन हो गया—वह परिवर्तन जो बहुत दिनोंसे धीरे-धीरे घनीभूत हो रहा था और जिसकी आशा सदा मुझमें बनी रही थी । इसका नतीजा यह हुआ कि अपने वर्गके लोगों अर्थात् धनवान् और विद्वान् आदमियोंका जीवन न सिर्फ मेरे निकट फीका और नीरस हो गया; बल्कि मेरी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य ही न रह गया । अपने लोगोंका संपूर्ण आचरण, वाद-विवाद, कला और विज्ञान मेरे सामने एक नई रोशनीमें आया । मैंने समझ लिया कि यह सब आत्म-असंयममात्र है और उनमें कुछ अर्थ लेना असंभव है; इसके प्रतिकूल जीवनका निर्माण करनेवाले श्रमिक लोगोंका जीवन मुझे सच्चे अर्थसे भरा दिखाई पड़ा । मैंने समझा कि यही जीवन है और इस जीवनसे प्राप्त होनेवाला अर्थ ही सच्चा है : और मैंने इसे स्वीकार कर लिया ।

: ११ :

मुझे याद आया कि जब मैं उन आदमियोंको इन विश्वासोंकी घोषणा करते देखता था, जिनके जीवन और आचरणमें उनका विरोध होता था तो इन्हीं विश्वासोंके प्रति मेरे हृदयमें विरक्ति पैदा होती थी और वे मुझे निस्सार प्रतीत होते थे, पर जब मैंने उन लोगोंको देखा जो इन विश्वासोंके अनुकूल जीवन व्यतीत करते थे तब उन्हीं विश्वासोंने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया और वे मुझे ठीक मालूम पड़ने लगे । इन

बातोंकी याद आने पर मैंने समझा कि क्यों तब मैंने इन विश्वासोंको अस्वीकार कर दिया था और उन्हें निरर्थक पाया था, और क्यों अब उन्हींको स्वीकार करता हूँ और उन्हें अर्थ एवं प्रयोजनसे पूर्ण पाता हूँ। मैं समझ गया कि मैंने गलती की थी और क्यों गलती की थी। इस गलतीका कारण मेरा गलत तरीके पर सोचना उतना न था जितना मेरा गलत तरीके पर जीवन व्यतीत करना था। मैंने समझ लिया कि मेरे किसी विचार-दोषने सत्यको मुझसे छिपा नहीं रक्खा था, बल्कि आकांक्षाओं और वासनाओंकी तृप्तिके प्रयत्नमें बीतनेवाले मेरे विषयासक्त जीवनने ही इस सत्यको मेरी आंखों की ओट कर रक्खा था। अब यह भी मेरी समझमें आ गया कि मेरा प्रश्न कि 'मेरा जीवन क्या है' उसका उत्तर—'वह एक बुराई है'—बिल्कुल ठीक था। गलती सिर्फ इतनी थी कि यह उत्तर सिर्फ मेरे जीवनकी ओर संकेत करता था, पर मैं इसे सब लोगोंके सामान्य-जीवन पर घटाता था। अब मैंने फिर अपनेसे प्रश्न किया कि मेरा जीवन क्या है और मुझे उत्तर मिला : एक बुराई और असंगति। और सचमुच मेरा जीवन—भोग-विलास और आकांक्षाओं का जीवन—बुरा और निरर्थक था, इसलिए वह उत्तर—'जीवन एक बुराई और असंगति है'—सिर्फ मेरे जीवनकी ओर संकेत करता था, न कि सामान्य मानव जीवनकी ओर। तब मैंने उस सत्यको समझा, जिसे बादमें 'गोस्पेल' (महात्मा ईसाके सदुपदेशों) में पाया, कि 'मनुष्य प्रकाशकी अपेक्षा अंधकारको ज्यादा प्रेम करते हैं; क्योंकि उनके आचरण पाप-पूर्ण हैं। प्रत्येक पापी आदमी प्रकाशसे घृणा करता है और इसलिए प्रकाशके समीप नहीं जाता कि उसके आचरणों और कामोंका तिरस्कार किया जायगा।' मैंने यह भी अनुभव किया कि जीवनके अर्थको समझनेके लिए पहले तो यह जरूरी है कि हमारी जिंदगी बुराईसे भरी और निरर्थक न हो; और फिर उसकी व्याख्या करनेके लिए विवेककी आवश्यकता पड़ती है। तब मेरी समझमें आया कि क्यों इतने लंबे असें तक मैं ऐसे स्पष्ट सत्यके इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहा और यह भी कि अगर किसीको मानव-जातिके जीवनके

विषयमें सोचना और बोलना हो तो उसे संपूर्ण जातिके जीवनके बारेमें सोचना और बोलना चाहिए, न कि उन लोगोंके जीवनके विषयमें जो पंगु और परोपजीवी जीवन बिताते हैं। यह सत्य तो सदा उतना ही सच्चा था जितना दो और दो मिलकर चार होते हैं। पर मैंने इसे स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि दो-दो चार मान लेने पर मुझे यह भी मानना पड़ता कि मैं बुरा हूँ; और मेरे लिए यह अनुभव करना कि मैं भला हूँ, दो-दो बराबर चारके स्वीकार करनेसे कहीं ज्यादा जरूरी और महत्त्वपूर्ण था। यह ज्ञान होने पर मैं भले आदमियोंके प्रति आकर्षित हुआ, उनको प्यार करने लगा, अपने प्रति मेरे मनमें घृणा पैदा हुई और मैंने सत्यको स्वीकार किया। अब सब बातें मेरे सामने स्पष्ट हो गयीं।

अगर एक जल्लाद, जिसकी सारी जिंदगी लोगोंको दारुण-यंत्रणा देने और उनका सिर काटनेमें बीती हो,—या एक शराबी व पागल जो एक ऐसे अंधेरे कमरेमें जिंदगीभर रहा हो जिसे उसने अपवित्र कर रक्खा है और जो सोचता हो कि इसे छोड़कर बाहर निकलते ही वह नष्ट हो जायगा—अपनेसे सवाल करे कि 'जीवन क्या है' तो वह इसके सिवा और क्या जवाब पा सकता है कि जीवन सबसे बड़ी बुराई है। इस पागलका जवाब बिल्कुल ठीक होगा, पर वहींतक जहातक यह स्वयं उस पर लागू होता है। अगर कहीं मैं भी ऐसा ही एक पागल होऊँ ? और कहीं हम सब धनवान और निठल्ले आदमी इसी तरह पागल हों तब ? मैंने अनुभव किया कि हम सब सचमुच ऐसे ही पागल हैं। कम-से-कम मैं तो अवश्य ऐसा था।

चिड़ियाका निर्माण ही इस तरह का होता है कि वह जरूरी तौर पर उड़े, चारा इकट्ठा करे और अपना घोंसला बनाए और जब मैं किसी चिड़ियाको ऐसा करते देखता हूँ तो उसके आनंदसे मुझे भी खुशी होती है। बकरी, खरगोश और भेड़िये भी इस तरह बनाये गये हैं कि वे अपने लिए भोजन जुटायें, बच्चे पैदा करें और कुटुंबको खिलायें, उनका पालन-पोषण करें और जब वे ऐसा करते हैं तब मुझे दृढ़ विश्वास होता

है कि वे सुखी हैं और उनका जीवन ठीक तौरसे बीत रहा है। फिर आदमीको क्या करना चाहिए ? उसे भी जानवरोंकी तरह अपनी जीविका उपार्जन करना चाहिए। दोनोंमें सिर्फ एक अंतर है कि अगर आदमी यह काम अकेले करेगा तो मिट जायगा; उसे जीविका न सिर्फ अपने लिए, बल्कि सबके लिए प्राप्त करनी चाहिए। और जब वह ऐसा करता है तब मुझे पक्का विश्वास हो जाता है कि वह सुखी है और उसका जीवन ठीक तौर पर बीत रहा है। पर मैंने अपने उत्तरदायी जीवनके तीस वर्षोंमें क्या किया ? सबके लिए जीविका-उपार्जन करना तो दूर, मैंने कभी अपने लिए भी खाद्य-सामग्री पैदा न की। मैं एक परावृत्तजीवीकी तरह जीता रहा और अपनेसे सवाल करता रहा कि मेरे जीवनका प्रयोजन क्या है ? मुझे उत्तर मिला : 'कोई प्रयोजन नहीं।' अगर मानव-जीवनका अर्थ उसे पुष्ट करनेमें है तो फिर मैं—जो तीस सालतक जीवनका समर्थन और पुष्टि करनेमें नहीं, बल्कि अपने अंदर और दूसरों के अंदर उसका विनाश करनेमें लगा रहा—इसके सिवा और कोई जवाब कैसे प्राप्त कर सकता था कि मेरा जीवन निरर्थक और दूषित है ?.. निस्संदेह वह निरर्थक और दूषित—दोनों था।

विश्व-जीवन किसीके संकल्पसे चल रहा है—सारे विश्वके जीवन और हमारे जीवनसे कोई अपना तात्पर्य सिद्ध करता है। उस संकल्प-शक्तिका अर्थ समझनेकी आशा करनेके लिए पहले हमसे जिस कार्यकी आशा की जाती है, उसे करना चाहिए। लेकिन यदि मैं वह न करूं जिसकी आशा मुझसे की जाती है तो मैं कभी समझ न सकूंगा कि मुझसे क्या करनेकी आशा की जाती है और यह समझना तो और कठिन होगा कि हम सब लोगोंसे और सारे विश्वसे क्या करनेकी आशा की जाती है।

अगर एक नंगे भिखारीको सड़कसे पकड़कर सुंदर भवनमें ले जाकर रक्खा जाय, उसे अच्छी तरह खिलाया-पिलाया जाय और उसे ऊपर नीचे एक हैंडिल घुमानेका काम दिया जाय तो प्रकट है कि इस

बातपर बहस करनेके पहले, कि क्यों उसे सड़कसे वहां लाया गया और क्यों उसे हैंडिल घुमाना चाहिए और यह कि क्या वहांका सारा काम सुव्यवस्थित है, मतलब और सब बातोंके पहले उसे हैंडिल घुमाना चाहिए। अगर वह हैंडिलको घुमायेगा तो उसे स्वयं पता चल जायगा कि इससे एक पंप चलाया जाता है और पंपके जरिये पानी निकलता है और उस पानीसे बागकी क्यारियोंकी सिंचाई होती है। तब वह पंपिंग स्टेशनसे दूसरी जगह लेजाया जायगा, वहा वह फल चुनकर इकट्ठे करेगा और अपने प्रभुके आनंदमें साभ्नीदार होगा; इस तरह धीरे-धीरे उन्नति करते हुए और छोटे कार्योंसे बड़े कार्योंको करते हुए वह दिन-दिन वहांकी व्यवस्थाकी अधिक जानकारी प्राप्त करता जायगा और इस तरह जब वह स्वयं वहांकी व्यवस्थामें भाग लेने लगेगा तो उसके मनमें यह प्रश्न करनेका विचार ही न उठेगा कि वह क्यों वहां है, और इसमें तो संदेह ही नहीं कि वह प्रभुकी बुराई कभी न करेगा।

इसी तरह वे लोग यानी सीधे-सादे, अशिक्षित श्रमिक, जिन्हें हम जानवर समझते हैं, उसकी इच्छाका पालन करते हैं, प्रभुकी बुराई नहीं करते, लेकिन हम बुद्धिमान लोग प्रभुका दिया भोजन तो कर लेते हैं, लेकिन प्रभु जो चाहता है उसे नहीं करते,—करना तो दूर रहा उलटे एक गोल में बैठकर बहस करते हैं : 'क्यों हमें उस हैंडिलको चलाना चाहिए ? क्या यह मूर्खतापूर्ण नहीं है ?' हम लोग ऐसे ही निर्याय करते हैं कि प्रभु मूर्ख है, या उसका अस्तित्व ही नहीं है, और हम बुद्धिमान हैं। पर हम सिर्फ यही अनुभव कर पाते हैं कि हम बिल्कुल निरर्थक हैं और हमें किसी तरह अपनेसे पिंड छुड़ाना चाहिए।

: १२ :

बौद्धिक ज्ञानके भ्रमकी चेतनाने मुझे फालतू मुक्ति, तर्क अथवा विवाद के प्रलोभनसे छुड़ानेमें सहायता की। इस विश्वाससे कि सत्यका ज्ञान तदनुकूल आचरणसे ही हो सकता है, मुझे अपनी जीवन-विधिके औचित्य

में संदेह पैदा हुआ; लेकिन मेरी रत्ना केवल इस कारण हुई कि मैं सबसे कटकर अलग रहना छोड़ सका और श्रमिक लोगोंके सीधे-सादे जीवनको देख सका तथा यह समझ सका कि केवल यही सच्चा जीवन है। मैंने समझ लिया कि यदि मैं जीवन और उसके अर्थको समझना चाहूँ तो मुझे पराब्रज्जीविका नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन बिताना चाहिए और मानव-जातिने जीवनको जो अर्थ प्रदान किया है उसे ग्रहण करना और उस जीवनमें निमग्न होकर उसको पहचानना चाहिए।

उस ज़मानेमें मेरे ऊपर जो बीती उसकी कथा इस प्रकार है। पूरे साल भरतक, जब प्रतिक्षण मेरे मनमें यह प्रश्न उठता था कि क्यों न मैं गोली या फांसीकी रस्तीसे सारे भगड़ेका खात्मा कर दूँ, तभी उन विचार-धाराओंके साथ-साथ जिनके बारेमें मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूँ, मेरा हृदय एक वेदनामयी अनुभूतिसे द्रव रहा था। इसे मैं ईश्वरकी खांजके सिवा और कुछ कहनेमें असमर्थ हूँ।

मैं कहना चाहता हूँ कि ईश्वरकी इस खोजमें तर्क नहीं, अनुभूति थी; क्योंकि यह खोज मेरे विचार-प्रवाहसे नहीं पैदा हुई थी, (उसमें उसका प्रत्यक्ष विरोध भी था) बल्कि हृदयसे उद्भूत हुई थी। यह किसी अज्ञात प्रदेशमें अनाथ और इकले पड़ जाने और किसीसे सहायता पानेकी आशाकी भावना थी।

यद्यपि मुझे पूरा विश्वास था कि ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करना असंभव है (कांटने दिखा दिया था, और मैं उसकी बातको समझता भी था, कि उसे सिद्ध या प्रमाणित नहीं किया जा सकता), फिर भी ईश्वरकी प्राप्तिकी चेष्टामें लगा रहा; मैंने आशा रखी कि वह मुझे प्राप्त होगा और पुराने स्वभावके कारण उसके प्रति प्रार्थना और विनय करता रहा जिसकी मुझे खोज थी, पर जिसे अभीतक मैंने पाया न था। कांट और शापनहारने जिन तर्कोंके द्वारा ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित करना असंभव बताया था उनपर मैं मनमें विचार करने लगा। मैंने उनका जांच शुरू की और उनका खंडन करने लगा। मैंने अपनेसे कहा कि

कारण, काल एवं आकाशकी भांति कोई विचार-श्रेणी नहीं है। यदि मेरा अस्तित्व है तो इसका कोई कारण अवश्य होगा और फिर इन कारणोंका भी कोई कारण होगा। और सबका जो मूलकारण है उसे ही लोगोंने 'ईश्वर' कहा है। मैं इस विचार पर रुका और अपनी सारी शक्तिसे उस आदि कारणकी उपस्थिति अनुभव करनेकी कोशिश की। और ज्यों ही मैंने स्वीकार कर लिया कि कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जिसके वशमें मैं हूँ, त्यों ही मैंने अनुभव किया कि अब मेरे लिए जीना संभव है। लेकिन मैंने अपनेसे पूछा : वह कारण, वह शक्ति क्या है ? उसका चिंतन मुझे किस प्रकार करना चाहिए ? उस शक्तिके साथ जिसे मैं 'ईश्वर' कहता हूँ, मेरा संबंध क्या है ? इन सवालोंने मुझे वही पूर्व-परिचित उत्तर मिले : 'वह स्रष्टा और पालक है।' इस जवाबसे मुझे संतोष नहीं हुआ, और मैंने अनुभव किया कि जिस चीज़की मुझे अपने जीवनके लिए आवश्यकता है उसे मैं अपने अंदर-ही-अंदर खो रहा हूँ। मैं डर गया और जिस ईश्वरकी खोजमें मैं था, उसीसे प्रार्थना करने लगा कि वह मेरी सहायता करे। लेकिन मैं जितनी ही प्रार्थना करता था उतना ही मुझे यह स्पष्ट होता गया कि 'वह' मेरी नहीं सुनता है और कोई ऐसा नहीं है जिसके सामने मैं अपनी पुकार करूँ। तब हृदयकी गहरी निराशाके साथ, मैंने कहा : 'प्रभु ! मुझपर कृपा करो। मेरी रक्षा करो। हे नाथ ! मुझे ज्ञान दो।' परंतु किसीने मुझपर कृपा नहीं की और मैं अनुभव करने लगा कि मेरे जीवनकी गति रुक रही है।

लेकिन हर तरफसे टकराकर बार-बार मैं इसी नतीजे पर पहुँचता कि बिना किसी कारण या हेतु या प्रयोजनके इस संसारमें मेरा आगमन संभव नहीं है; मैं पक्षीके उस बच्चेकी तरह नहीं हो सकता जो एकाएक अपने घोंसलेसे गिर पड़ा हो। और यदि मैं मान भी लूँ कि बात ऐसी ही है और मैं पीठके बल लंबी घासोंपर पड़ा हुआ चीख रहा हूँ, तब भी तो मैं चीखता इसलिए हूँ कि मैं जानता हूँ कि एक माने मुझे अपने पेटमें बढ़ाया, सेया, जन्म दिया और चारा चुगा-चुगाकर मुझे बड़ा किया

है तथा वह मुझे प्यार करती है। तब वह—वह मां कहां है ? अगर मुझे त्याग दिया गया है तो वह कौन है जिसने मुझे त्यागा है ? मैं अपने-से यह बात छिपा नहीं सकता कि किसी-न-किसीने मुझे जन्म दिया, पाला और मुझे प्रेम किया है। तब वह 'कोई' कौन है ? फिर वही उत्तर 'ईश्वर' ? तब वह मेरी खोज, मेरी निराशा और मेरे संघर्षको जानता है और देख रहा है।

तब मैंने अपने मनमें कहा—'उसका अस्तित्व है।' इसे स्वीकार करनेके अनंतर क्षणभरमें मेरे अंदर जीवन उठ खड़ा हुआ और मुझे जीवनकी संभवनीयता और आनंदका अनुभव हुआ। पर फिर वही बात हुई; ईश्वरके अस्तित्वकी इस स्वीकृतिके बाद मैं उसके साथ अपने संबंधका पता लगाने चला; और फिर मैंने उस ईश्वरकी कल्पना की, जो हमारा स्रष्टा है और जिसने अपने पुत्रको हमारे उद्धारके लिए पृथ्वी-पर भेजा, बस जगत तथा मुझसे पृथक् वह ईश्वर फिर मेरी आंखोंके सामने ही बर्फके टुकड़ेकी तरह पिघलकर बह गया; उसका कोई चिह्न नहीं रह गया और फिर मेरे अंदर जीवनका वह स्रोत सूख गया; निराशासे मेरा मन भर गया और मैंने अनुभव किया कि सिवाय अपनी हत्या कर डालनेके अब मैं और कुछ नहीं कर सकता। और सबसे बुरी बात तो यह थी कि मैं अनुभव करता था कि मैं अपनेको मार भी नहीं सकता।

केवल दो या तीन बार नहीं, बल्कि सैकड़ों बार मेरी यही दशा हुई; पहले आनंद एवं उल्लास और फिर जीवनकी असंभवनीयताकी चेतना और निराशा।

मुझे याद है, बसंतकी शुरुआतके दिन थे। मैं वनमें अकेला चुपचाप बैठा उसकी ध्वनि सुन रहा था, जो कि मैं बराबर पिछले तीन वर्षोंमें सुन रहा था। मैं उसीका ध्यान लगाये हुए था। मैं पुनः ईश्वरकी खोजमें था।

मैंने भुंभलाकर अपनेसे कहा—'अच्छा, मान लो कोई ईश्वर नहीं है। कोई ऐसा नहीं है जो मेरी कल्पनाके बाहरकी वस्तु हो और मेरे सारे

जीवनकी तरह वास्तविक हो । उसका अस्तित्व नहीं है और कोई चमत्कार उसके अस्तित्वको प्रमाणित नहीं कर सकते; क्योंकि चमत्कार तो मेरी ही कल्पनाके अंतर्गत हैं, फिर वे बुद्धि-प्राप्त भी नहीं हैं ।

‘लेकिन जिस ईश्वरकी मैं खोज करता हूँ उसके प्रति मेरा यह अंत-बोध, मेरी यह अंतधारणा ? मैंने अपने से पूछा—‘यह अंतबोध कहासे आया ?’ बस यह सोचते ही, फिर मेरा अंतर जीवनकी आनंदमयी लहरोंसे भर गया । मेरे चतुर्दिक जो कुछ था सब जीवनसे पूर्ण और सार्थक हो उठा । लेकिन मेरा यह आनंद अधिक समयतक स्थिर न रह सका । मेरा मन फिर अपनी उधेड़-बुनमें लग गया ।

मैंने अपने मनमें कहा—‘ईश्वरकी धारणा तो ईश्वर नहीं है । धारणा तो वह चीज़ है जो मेरे ही अंदर जन्म लेती है । ईश्वरकी धारणा तो एक ऐसी चीज़ है जिसे हम अपने अंदर बना सकते या बननेसे रोक सकते हैं । यह तो वह चीज़ नहीं है जिसकी खोजमें मैं हूँ । मैं तो उस चीज़की खोज कर रहा हूँ जिसके बिना जीवन संभव ही न हो ।’ बस फिर मेरे बाहर-भीतर जो कुछ था मानो सब निर्जाँव होने लगा, और फिर मेरे मनमें अपनेको समाप्त कर देनेकी इच्छा पैदा हुई ।

किंतु तब मैंने अपनी दृष्टि अपने पर, और मेरे अंदर जो कुछ चल रहा था, उस पर डाली, और जीवनकी गतिके बंद होने और फिर प्रफुल्लता और स्फूर्तिका प्रवाह जारी होनेकी उन क्रियाओंका स्मरण किया जो मेरे अंदर सैकड़ों बार घटित हो चुकी थीं । मुझे याद आया कि मुझमें सिर्फ तभी तब जीवनकी अनुभूति हुई जब-जब मैंने ईश्वरमें विश्वास रक्खा । जो बात पहले थी, वही अब भी है; जीनेके लिए मुझे सिर्फ ईश्वरके अस्तित्वके निश्चयकी ज़रूरत है; और ज्योंही मैं उसे भूलता हूँ या उसमें अविश्वास करता हूँ त्यों ही मेरी मृत्यु निश्चित है ।

तब स्फूर्ति और मृत्युके ये अनुभव क्या हैं ? जब ईश्वरके अस्तित्वमें मेरे विश्वासका लोप हो जाता है तब मानो मेरी जीवन-शक्तिका अंत हो जाता है; तब मैं अपनेको जीता हुआ नहीं अनुभव करता । अगर मेरे

अंदर उसे पानेकी एक धुंधली-सी आशा न होती तो अबतक कभीका मैं अपनी हत्या कर चुका होता । अपनेको सचमुच जीता हुआ तो मैं तभीतक अनुभव करता हूँ जबतक मुझे 'उसकी' अनुभूति होती रहती है और मुझे उसकी खोज रहती है । 'तुम और क्या खोजते हो ?' मेरे अंदर एक आवाज़ हुई । 'यही वह है । वह है जिसके बिना कोई जी नहीं सकता । ईश्वरको जानना और जीवित रहना एक ही बात है । ईश्वर ही जीवन है ।'

'ईश्वरकी खोज करते हुए जीओ, तब तुम्हारा जीवन ईश्वरहीन न होगा ।' तब मेरे अंदर और बाहर जो कुछ था वह सब प्रकाशसे पूर्ण हो उठा और उस प्रकाशने फिर मुझे परित्याग नहीं किया ।

इस तरह मैं आत्म-हत्यासे बच गया । यह मैं नहीं कह सकता कि कब और कैसे यह परिवर्तन हुआ । जैसे धीरे-धीरे मेरे अंदरकी जीवन-शक्ति नष्ट हो गई थी और मेरे लिए जीना असंभव हो उठा था, जीवनकी गति बंद हो गई थी और मुझे आत्म-हत्या करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती थी, उसी तरह धीरे-धीरे मेरे अंदर जीवन-शक्तिकी प्रत्यागमन हुआ । और यह एक आश्चर्यजनक बात है कि जीवनकी जो शक्ति मेरे अंदर लौटी वह कोई नयी नहीं थी, बल्कि वही पुरानी शक्ति थी जिसने मेरे जीवनके प्रारंभिक दिनोंमें मेरा भार वहन किया था ।

मैं पुनः उसी अवस्थामें पहुंच गया जो बचपन और किशोरावस्थाके प्रारंभिक दिनोंमें थी । पुनः मेरे हृदयमें उस संकल्प-शक्ति* पर विश्वास उदय हुआ जिसने मुझे उत्पन्न किया और जो मुझसे कुछ आशा रखती है । मैं पुनः इस विश्वास पर पहुंचा कि मेरे जीवनका प्रधान और एकमात्र उद्देश्य पहलेसे अधिक अच्छा होना अर्थात् उस संकल्प-शक्तिके अनुसार जीवन-व्यतीत करना है । मैं इस विश्वासपर पहुंचा कि मानव-जातिने अनादि-कालसे अपने पथ-प्रदर्शनके लिए जो कुछ खोज निकाला है उसमें ही मैं उस संकल्प-शक्तिकी अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकता हूँ ।

*टॉल्स्टॉय ने 'ईश्वरेच्छा' के अर्थ में इस शब्दका प्रयोग किया है ।

मतलब यह कि मैं ईश्वरमें, नैतिकपूर्णतामें और जीवनके प्रयोजनकी परंपरामें विश्वास करने लगा। दोनों अवस्थाओंमें अंतर इतना ही था कि उस समय ये सब बातें मैंने अचेतनावस्थामें स्वीकार कर ली थीं, किंतु अब मैं जान गया था कि इसके बिना मेरा जीवन ही असंभव है।

मुझपर कुछ इस तरहसे बीती : मैं एक नावमें (मुझे याद नहीं है कब) चढ़ा दिया गया और किसी अज्ञात किनारेसे धक्का देकर नदीकी ओर बढ़ा दिया गया। मुझे दूसरे किनारेकी ओर संकेत करके गंतव्य स्थानका एक धुंधला-सा आभास दे दिया गया और मेरे अनभ्यस्त हाथोंमें डांड पकड़ा देनेके बाद लोगोंने मुझे अकेले छोड़ दिया। मैंने अपनी शक्ति-भर खेकर नावको आगे बढ़ाया, लेकिन ज्यों-ज्यों मैं मंभ्रधारकी ओर बढ़ा त्यों-त्यों प्रवाह तीव्र होता गया और वह बार-बार मेरे लक्ष्यसे दूर बहा ले जाने लगी। अपनी तरह मैंने और भी बहुतसे लोगोंको धारामें बहे जाते देखा। कुछ ऐसे नाविक थे जो बराबर खेते भी जा रहे थे; दूसरे कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपनी पतवार डाल दी थी। वहां मैंने आदमियोंसे भरी हुई अनेक बड़ी-बड़ी नावें देखीं। कुछ धारासे संघर्ष करती थीं; कुछने आत्म-समर्पण कर दिया था। जितना ही आगे मैं बढ़ता गया उतना ही मेरा ध्यान अपनी दिशा भूलकर धारामें बहे जाते हुए लोगोंकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होता गया और उतना ही मैं अपना मार्ग और लक्ष्य, जिधर जानेका संकेत मुझे किया गया था, भूलता गया। ठीक मंभ्रधारमें, जहाजों और नावोंकी भीड़में, जिन्हें धारा बहाये लिये जा रही थी, मैं अपनी दिशा बिल्कुल भूल गया, मैंने भी अपनी पतवार डाल दी। मेरे चारों तरफ हंसते और उल्लास मनाते हुए वे सब लोग थे जो धाराके साथ बहे जा रहे थे; वे सब लोग मुझे तथा परस्पर यह विश्वास दिला रहे थे कि और किसी दिशामें जाना संभव नहीं है। मैंने उनका विश्वास कर लिया और उनके साथ बहने लगा। मैं बहुत दूरतक चहता हुआ चला गया—इतनी दूरतक कि मुझे नदीकी तीव्र धाराओंके गिरनेका जोरदार शब्द सुनाई पड़ने लगा; मैंने समझ लिया कि अब मेरा

नाश निश्चित है। मैंने उस प्रपातमें नावोंको टुकड़े-टुकड़े होते देखा। मुझे अपनी स्मृति हो आयी। एक असेंसे मैं यह समझनेमें असमर्थ था कि मेरे साथ क्या घटनाएं हुई हैं। मुझे अपने सामने सिवा उस विनाशके और कुछ दिखलाई न देता था, जिसकी ओर मैं तेज़ीसे बहता चला जा रहा था और जिसका भय मेरे प्राणोंमें समा गया था। मुझे कहीं रक्षाका कोई स्थान दिखाई न पड़ता था, और मैं नहीं जानता था कि मुझे क्या करना चाहिए; किंतु जब मैंने पीछेकी ओर दृष्टि फेरी तो यह देखकर आश्चर्य-चकित रह गया कि असंख्य नौकाएं श्रमपूर्वक लगातार धाराको काटकर बढ़ रही हैं और तब मुझे किनारे का, डांडोंका और अपनी दिशाका स्मरण आया और मैंने पीछे लौटकर और धाराको चीरकर तटकी ओर बढ़नेमें अपनी शक्ति लगाई।

यह तट ईश्वर था; दिशा परंपरा थी; और तटकी ओर बढ़ने तथा ईश्वरसे मिलनेकी जो स्वतंत्रता मुझे दी गई थी, वही पतवार थी। इस प्रकार जीवनकी शक्ति पुनः मेरे अंदर जाग्रत हुई और पुनः मैंने जीना शुरू किया।

: १३ :

मैं अपने वर्गके जीवनसे दूर हट गया और मैंने स्वीकार किया कि हमारा जीवन कोई जीवन नहीं, बल्कि जीवनका एक स्वांगभर है और वैभव एवं संपन्नताकी जिस स्थितिमें हम रहते हैं वह हमें जीवनको समझनेकी संभावनासे वंचित कर देती है। और यह कि जीवनको समझनेके लिए अपने जैसे परान्न-जीवियों और जीवनपर भार बने लोगोंके अपवाद-तुल्य जीवनको नहीं, बल्कि सीधे-सादे श्रमिक लोगोंके जीवनको समझना चाहिए—उन लोगोंके जीवनको, जो जीवनका निर्माण करते हैं। वे जीवनका क्या अर्थ और प्रयोजन समझते हैं, इसपर भी हमें विचार करना चाहिए। हमारे चारों ओर मेहनत-मजूरी करने वाले रूसी लोग थे,

इसलिए मैं उनकी ओर झुका और इस बात पर ध्यान देने लगा कि वे जीवनका क्या अर्थ और प्रयोजन समझते हैं । उनके अर्थको शब्दोंमें कहना चाहें तो यों कह सकते हैं : इस संसारमें प्रत्येक मनुष्य ईश्वरकी इच्छासे आया है । और ईश्वरने मनुष्यको इस तरह बनाया है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी आत्माका विनाश वा रक्षण कर सकता है । जीवन में मनुष्यका उद्देश्य अपनी आत्माकी रक्षा करना है और अपनी आत्माकी रक्षा करनेके लिए उसे 'दिव्य' जीवन बिताना चाहिए; 'दिव्य' जीवन बितानेके लिए उसे सब सुखोपभोगोंका त्याग करना चाहिए, स्वयं श्रम करना चाहिए, नम्र और दयावान बनना तथा कष्ट सहन करना चाहिए । जनता जीवनका यह अर्थ, धर्म और निष्ठाकी उस संपूर्ण शिक्षासे ग्रहण करती है जो उसे पुरोहितों, पादरियों और जीवित परंपराओंसे मिलती है । यह अर्थ मुझे स्पष्ट था और मेरे हृदयके निकट था । पर कोटि-कोटि असांप्रदायिक लोगोंके लोकधर्मके इस अर्थके साथ बहुत-सी ऐसी बातें भी अविभेद्य रूपसे मिल गई थीं जो मेरी समझमें नहीं आती थीं और और जिनसे मुझे घृणा होती थी । सर्वसाधारण इनको अलग-अलग नहीं कर सकते; मैं भी नहीं कर सकता । और यद्यपि लोगोंके विश्वासके साथ मिली बहुतेरी बातों पर मुझे आश्चर्य होता था फिर भी मैंने उनकी सारी बातोंको ग्रहण कर लिया; उपासनाओंमें शामिल होने लगा; सुबह-शाम प्रार्थनामें सिर झुकाने लगा, उपवास भी किये । पहले मेरी बुद्धिने किसीका विरोध नहीं किया । जो बातें पहले मुझे असंभव प्रतीत होती थीं, अब मेरे अंदर किसी प्रकारका विरोध पैदा नहीं करती थीं ।

श्रद्धाके साथ मेरा पहलेका और अबका संबंध बिल्कुल जुदा था । पहले जीवन मुझे अर्थसे भरा प्रतीत होता था और श्रद्धा प्रेमियोंका स्वेच्छाचारपूर्ण कथन बिल्कुल अनावश्यक, अनुचित और जीवनसे असंबद्ध मालूम पड़ता था । तब मैंने अपने मनमें पूछा कि आखिर इन प्रेमियोंका अर्थ क्या है और मुझको निश्चय हो गया कि उनका कुछ अर्थ नहीं है । मैंने उन्हें अस्वीकार कर दिया । पर अब इसके प्रतिकूल मैं

दृढ़तापूर्वक जानता था कि (बिना श्रद्धाके) मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है, न कोई अर्थ हो ही सकता है, और श्रद्धाकी वे सब शक्तें अनावश्यक नहीं रह गईं, बल्कि असंदिग्ध अनुभवके द्वारा मैं इस निर्णयपर पहुंचा कि श्रद्धा द्वारा उपस्थित किये जानेवाले ये प्रमेय ही जीवनको एक अर्थ प्रदान करते हैं—उसे सार्थक बनाते हैं । पहले मैं उन्हें अनावश्यक, निरर्थक बकवादकी तरह देखता था, पर अब यद्यपि मैं उनको समझता नहीं था फिर भी इतना जानता था कि उनका कुछ अर्थ अवश्य है, और मैंने अपनेसे कहा कि मुझे उनको अवश्य समझना चाहिए ।

मैंने अपने मनमें कहा कि विवेकयुक्त संपूर्ण मानवताकी भांति धर्मका ज्ञान भी किसी गोप्य स्रोतमें प्रवाहित होता है । वह स्रोत ईश्वर है, जो मानव-शरीर एवं मानवी-विवेक दोनोंका मूल है । जैसे मेरा शरीर मुझे ईश्वरसे मिला है, वैसे ही मेरा विवेक और जीवनका मेरा ज्ञान भी मुझे ईश्वरसे ही प्राप्त हुआ है । इसलिए जीवनके उस ज्ञानके विकासकी विभिन्न श्रेणियां झूठी नहीं हो सकतीं । जिन सब बातोंमें सर्वसाधारणका सच्चा विश्वास है, वे अवश्य सत्य होंगी; उनकी अभिव्यक्तियां भिन्न-भिन्न तरहसे हुई हों, पर वे असत्य नहीं हो सकतीं । इसलिए अगर वे मेरे सामने असत्यके रूपमें आती हैं तो इसका सिर्फ यही मतलब है कि मैं उनको समझ नहीं पाया हूँ । मैंने अपनेसे यह भी कहा कि हर एक धर्मका तत्त्व जीवनको ऐसा अर्थ प्रदान करना है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं कर सकती । धर्मद्वारा विलासितामें मरते हुए राजा, शक्तिसे अधिक श्रम करनेके कारण पीड़ित वृद्ध-दास, बुद्धि-हीन बच्चे, ज्ञानवान वृद्ध, मंद-बुद्धि बुढ़िया, तरुण-सुखी पत्नी, वासनाओंसे संतप्त नौजवान, मतलब—हर तरहकी शिक्षा और जीवन-मर्यादाके आदमियोंके सवालका जवाब दिया जासके, इसके लिए यह समझ लेना जरूरी है कि यद्यपि जीवनके इस नित्य प्रश्न—कि 'मैं क्यों जीता हूँ और मेरे जीवनसे क्या नतीजा निकलेगा ?'—का एक ही उत्तर है अर्थात् यह उत्तर तत्त्वतः एक है, परंतु उसके रूप अनेक होने ही चाहिए; और वह जितना ही एक सच्चा और गहरा होगा, प्रयत्न-पूर्वक की

जानेवाली उसकी अभिव्यक्तिमें उतनी ही विचित्रताएं एवं विकृतियां दिखाई पड़ेंगी। ये विचित्रताएं और विकृतियां प्रत्येक व्यक्तिके शिक्षण और मर्यादाके अनुकूल होंगी। परंतु इस तर्कने यद्यपि धर्मके कर्मकांड पक्षकी अनेक असंगतियोंको मेरी आंखोंके सामने उचित सिद्ध करके पेश किया, फिर भी वह इतना काफ़ी नहीं था कि जीवनके इस महान मामले— धर्म—में ऐसी बातें करनेकी आज्ञा देता जो मुझे आपत्तिजनक प्रतीत होती थीं। अपने संपूर्ण अंतःकरणके साथ मैं ऐसी स्थितिमें पहुंचनेकी कामना करता था जिसमें सर्वसाधारणके साथ हिलमिल सकूं और उनके धर्मके कर्मकांड पक्षका पालन एवं आचरण कर सकूं; लेकिन मैं वैसा कर नहीं सका। मुझे अनुभव होता था कि अगर मैं ऐसा करता हूं तो मानो अपनेसे ही भूठ बोलता हूं और जो कुछ मेरे निकट पवित्र है, उसका उपहास करता हूं। जब मैं इस उधेड़बुनमें पड़ा हुआ था तब नूतन रूसी धार्मिक लेखकोंने मुझे इस संकटसे बचाया।

इन धर्मवेत्ताओंने जो व्याख्याकी वह यों थी कि 'हमारे धर्मका मुख्य सिद्धांत चर्च (ईसाई मंदिर-संस्था) की निर्भातताका सिद्धांत है। यदि हम इस सिद्धांतको मान लेते हैं तो इससे अनिवार्य रूपसे निष्कर्ष निकलता है कि चर्च जो कुछ मानता है वह सब सत्य है। बस, प्रेमद्वारा प्रथित सच्चे आस्तिकों और फलतः सच्चे ज्ञानियोंके एक समुदायके रूपमें चर्चको मैंने अपने विश्वासका आधार बना लिया। मैंने अपनेसे कहा कि व्यक्तिको ईश्वरीय-सत्य प्राप्त नहीं हो सकता; वह सत्य केवल प्रेमद्वारा जुड़ेहुए लोगोंके संपूर्ण समुदायके सामने ही प्रकट होसकता है। सत्यको पानेके लिए सबसे जुदा नहीं होना चाहिए और सबसे जुदा न होनेके लिए यह ज़रूरी है कि मनुष्य प्यार करे और उन सब बातोंको सहन करे, जिनको वह नहीं मानता है।

सत्य प्रेमके सामने अपनेको प्रकट करता है और अगर तुम चर्च या ईसाई धर्मसंस्थाके आचारोंके सामने सिर नहीं झुकाते तो तुम प्रेमका उल्लंघन या तिरस्कार करते हो; और प्रेमका उल्लंघन करनेके कारण तुम

अपनेको सत्य पहचानने और पानेकी संभावनासे वंचित करते हो। इस तर्कमें जो हेत्वाभास या वाक्छल था उसे उस समय मैं देख न सका। मैं नहीं समझ सका कि प्रेमके संग्रथनसे यद्यपि परमोच्च प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु वह ईश्वरीय सत्यको देनेमें असमर्थ है। मैं यह भी नहीं देख सका कि प्रेम सत्यकी किसी खास अभिव्यक्तिको भी संग्रथनकी आवश्यक शर्तके रूपमें नहीं रख सकता। मेरे तर्कमें जो दोष थे उन्हें उस समय मैंने नहीं देखा, इसलिए कट्टर धर्म-संस्थाके संपूर्ण आचारोंको मानकर मैं उन्हें कार्यान्वित करने लगा—यद्यपि उनमेंसे अधिकांशका अर्थ मेरी समझमें न आया था। उस समय मैंने अपने संपूर्ण अंतःकरणके साथ सब तरहके तर्कों और विरोधोंसे बचनेकी कोशिश की और चर्चके जो वक्तव्य मेरे सामने आये उन्हें, जहां तक हो सका, उचित समझने और सिद्ध करनेका प्रयत्न किया।

ईसाई-धर्म-संस्था (चर्च) के आचारों और विधियोंका पालन करते हुए मैंने अपनी बुद्धिका शमन कर दिया और उस परंपराके आगे सिर झुका दिया जो संपूर्ण मानव-जातिमें पाई जाती है। मैंने अपनेको पूर्वजों पिता-माता और दादा-दादीके साथ, जिन्हें मैं प्रेम करता था, मिला दिया। उन्होंने तथा मेरे सारे पूर्वजोंने इसी प्रकार चर्च में विश्वास रखते हुए जीवन बिताया था और उन्होंने ही मुझे उत्पन्न किया था। मैंने लाखों-करोड़ों सामान्य लोगोंके साथ भी अपनेको मिला लिया जिनकी मैं इज्जत करता था। फिर इन आचारोंके पालनमें कोई 'बुराई' तो थी नहीं। (मैं अपनी वासनाओंके प्रति आसक्तिको ही 'बुराई' मानता था)। गिर्जेकी उपासनाओंमें शामिल होनेके लिए जब मैं सुबह जल्दी उठता था तो समझता था कि मैं कोई अच्छा ही काम कर रहा हूँ, क्योंकि अपने पूर्वजों और समकालिकोंके साथ ऐक्य स्थापित करने और जीवनका अर्थ प्राप्त करनेके लिए, मैं अपने मानसिक अहंकारका त्याग करतेहुए अपने शारीरिक सुखोंको छोड़ रहा हूँ। इसी तरह घुटने मोड़कर प्रार्थना कहने, व्रत-उपवास करने, ईसाके स्मरणार्थ भोजमें बैठने (कम्यूनियन) वगैरामें भी अच्छाई देखता था।

चाहे ये त्याग कितने ही नगण्य हों, मैं उनको कुछ अच्छेके लिए ही करता था। मैं व्रत-उपवास रखता, घर पर तथा गिर्जेमें नियत समय पर प्रार्थना करता एवं अन्य आचारोंका पालन करता था। गिर्जेमें जब धर्मोपदेश होता तो मैं उसके एक-एक शब्द पर ध्यान देता और जहांतक हो सकता उसमें अर्थ ढूंढनेकी कोशिश करता था। धर्मोपदेशमें मेरे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द ये होते थे : 'हम एक-दूसरेको एक समान प्यार करें।' आगेके इन शब्दोंको—'हम परमपिता, उसके पुत्र और 'होली घोस्ट'* की एकतामें विश्वास रखते हैं' मैं दरगुजर कर जाता था; क्योंकि उन्हें समझ न सकता था।

: १४ :

जीवित रहनेके लिए श्रद्धा रखना उस समय मेरे वास्ते इतना जरूरी हो गया था कि मैंने अचेतन रीतिमें धर्मशास्त्रके पारस्परिक विरोधों और अस्पष्टताओंको अपनेसे छिपाया। लेकिन आचारों और विधियोंमें इस तरह अर्थ देखनेकी भी एक सोमा थी। प्रार्थनाका एक बड़ा हिस्सा सम्राट् या ज़ार तथा उसके संबंधियोंकी हित-कामनासे भरा हुआ था। मैंने अपने मनको समझानेकी कोशिशकी कि चूंकि उनके सामने प्रलोभन अधिक हैं, इसलिए उनके लिए प्रभुसे प्रार्थना करना उचित ही है। इसी तरह अपने शत्रुओं और बुराइयोंको पांव तले दबा सकनेकी प्रार्थनाके बारेमें मैंने अपने मनको यों समझानेकी कोशिश की कि यहां 'शत्रु' का अर्थ 'पाप' है। किंतु इस तरहकी प्रार्थनाओंमें उपासना भरी होती थी। पूजा व उपासनाका प्रायः दो-तिहाई हिस्सा इसी प्रकारकी बातोंसे भरा होता था, जिनका या तो कोई अर्थ ही मेरी समझमें नहीं आता था अथवा यदि मैं खीच-तानकर उनका कोई अर्थ निकालनेकी कोशिश

* 'होली घोस्ट' = ईसाई त्रिमूर्तिकी तृतीय पुरुषः जीवात्मा—परमपिता एवं पुत्र (ईसा) से उद्भूत।

करता तो मुझे अनुभव होता था कि मैं झूठ बोल रहा हूँ और इस प्रकार ईश्वरके साथ मेरा जो संबंध है उसे नष्ट कर रहा हूँ और श्रद्धाकी संपूर्ण संभावनाओंसे अपनेको वंचित कर रहा हूँ ।

कुछ ऐसा ही अनुभव मुझे मुख्य-मुख्य त्यौहारोंके बारेमें भी होता था । 'सैबेथ'* का स्मरण करना, यानी ईश्वरके ध्यान-पूजामें एक दिन बिताना, इसे तो मैं समझ सकता था । लेकिन छुट्टीका मुख्य दिन प्रभु ईसाके सूलीपर पुनः जीवित हो उठनेके स्मारक-रूपमें मनाया जाता था और इस पुनर्जीवनकी सच्चाईकी मैं किसी प्रकार कल्पना या अनुभूति न कर पाता था । रविवारकी साप्ताहिक छुट्टीको भी 'पुनर्जीवन दिवस'का नाम दिया गया था । किसमस या बड़ा दिनको छोड़कर शेष ग्यारह बड़े त्यौहार चमत्कारोंके स्मारक थे । इन दिवसोंको मनाते समय मुझे अनुभव होता था कि उन्हीं बातोंको महत्त्व दिया जा रहा है जिनका मेरे निकट कोई महत्त्व न था । मैं मनको समझाने और खींच-तानकर अर्थ निकालने की कोशिश करता या अपनेको प्रलुब्ध करनेवाली इन बातोंको न देखनेके लिए उधरसे आंख मूंद लेता था ।

इनमेंसे ज्यादातर विचार सामान्य और महत्त्वपूर्ण धार्मिक विधियोंको करते समय मेरे दिलमें पैदा हुए थे । इनमें अपतिस्मा और 'कम्प्यूनियन' (ईसाके स्मरणार्थ भोज : प्रसाद जिसे ईसाई ईसाका रक्त-मांस समझकर ग्रहण करते हैं) की प्रथाएं मुख्य थीं । इनमें कोई ऐसी बात न थी जो दिमागमें न आ सकनेवाली हो; सब बातें साफ और समझमें आने लायक थीं और ऐसी बातें थीं जो मुझे प्रलोभनकी तरफ ले जाती मालूम पड़ती थीं । मैं बड़ी खींचातानीमें पड़ गया कि मुझे अपने प्रति झूठ बोलना चाहिए या उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए ।

बहुत वर्षोंके बाद जब पहली बार मुझे 'यूकारिस्ट' (प्रभु ईसाके भोजका प्रसाद ईसाके रक्त-मांस रूपमें) मिला तो मेरे मनकी जो हालत

* रविवारका दिन, जब ईसामसीह सूलीपर पुनर्जीवित हो उठे थे । रूसमें रविवारको 'पुनर्जीवन (रीज़रैक्शन) दिवस' कहा जाता है ।

हुई, उसे मैं कभी भूल न सकूंगा। पूजा, पापोंकी स्वीकृति और प्रार्थनाएं सब समझमें आ सकनेवाली चीजें थीं और उनसे मेरे मनमें आह्लाद हुआ कि जीवनका अर्थ मेरे सामने खुल रहा है। 'कम्प्यूनियन'को तो मैंने एक ऐसा कृत्य समझ लिया जो ईसाके स्मरणार्थ किया जाता हो और ईसा की शिक्षाओंको पूर्णतः ग्रहण करने एवं पापसे मुक्त होनेका निर्देश करता हो। यदि इस व्याख्यामें कुछ बनावट, कुछ कृत्रिमता थी तो मुझे उस वक्त उसका कुछ ध्यान न था। उस सीधे-सादे देहाती पादरीके सामने अपनी आत्माकी संपूर्ण गंदगी निकाल देने और अपने पापोंको स्वीकार करके अपनेको दीन-हीन प्रदर्शित करनेमें मुझे इतनी प्रसन्नता हुई थी; मैं गिर्जेके लिए प्रार्थनाएं लिखनेवाले अतीतकालके धर्म-पिताओंके साथ तन्मयता प्राप्त करके इतना खुश था; पूर्वकाल और इस समयके आस्तिकों का सन्निध्य प्राप्त करके मुझे इतनी खुशी हासिल हुई थी कि अपनी व्याख्या व सफाईकी कृत्रिमताकी ओर ध्यान देनेका मुझे मौका ही न मिला। लेकिन जब मैं वेदीके द्वारके निकट पहुंचा और पुरोहितने मुझसे कहलवाया कि 'मुझे विश्वास है कि जो कुछ मैं निगलने जा रहा हूँ वह सचमुच (ईसाका) रक्त और मांस है' तो मुझे अपने दिलमें दर्दका अनुभव हुआ। इसमें केवल असत्यकी भूलक ही नहीं थी; यह एक ऐसे आदमी द्वारा की जानेवाली निर्दय मांग थी जिम्ने कभी जाना ही नहीं कि श्रद्धा क्या चीज है।

आज मैं यह कह रहा हूँ कि यह एक निर्दय मांग थी, लेकिन उस वक्त मैं ऐसा नहीं समझता था। उस वक्त तो मुझे सिर्फ एक गहरी वेदनाका अनुभव था; यह वेदना अवरुणीय थी। युवावस्थाकी मेरी वह स्थिति अब न थी जिसमें मैं समझता था कि जीवनमें सब कुछ स्पष्ट है। यह ठीक है कि मैंने श्रद्धाको स्वीकार कर लिया; क्योंकि श्रद्धाको छोड़कर दुनिया में विनाशके अतिरिक्त मैंने और कुछ न पाया था। इसलिए इस धर्मनिष्ठा का त्याग कर देना असंभव था और इसलिए मैं झुक गया—मैंने माथा टेक दिया। मुझे अपने अंतकरणमें एक ऐसी अनुभूति प्राप्त हुई जो इस स्थितिको सहन करने योग्य बनानेमें मुझे सहायता देती रही। यह आत्म-

दैन्य और नम्रताकी अनुभूति थी। मैंने अपनेको दीन-हीन बना लिया, और पाखंड व नास्तिकताकी किसी अनुभूतिके बगैर उस रक्त-मांसको निगल गया। ऐसा करते वक्त मेरे मनमें यही इच्छा थी कि मुझे विश्वास रखना चाहिए। लेकिन चोट पड़ चुकी थी और मैं फिर दूसरी बार वहां न जा सका।

फिर भी मैं चर्चकी विधियोंका पालन करता रहा और विश्वास करता रहा कि जिन धर्म-सिद्धांतोंका मैं पालन कर रहा हूं उनमें सत्य निहित है। इसी वक्त मेरे साथ कुछ ऐसी बातें हुई जिसे आज तो मैं समझता हूं पर जो उस समय आश्चर्यजनक मालूम पड़ती थी।

एक दिन मैं एक अशिक्षितकी बातें सुन रहा था। वह ईश्वर, धर्म, जीवन और मुक्तिके बारेमें कह रहा था। इसी वक्त धर्मनिष्ठाका रहस्य अपने-आप मेरे सामने प्रकट हुआ। मैं जन-साधारणके निकट और भी खिंच गया; जीवन और धर्म-विश्वासके विषयमें उनकी सम्मतियां सुनने लगा और दिन-दिन सत्यको अधिकाधिक समझने लगा। यही बात उस वक्त भी हुई जब मैं संतोंकी जीवन-गाथाएं पढ़ रहा था। ये मेरी बड़ी प्रिय पुस्तकें बन गई थीं। इनमें चमत्कारकी जो कथाएं थीं उन्हें मैंने यह समझकर अलग कर दिया कि वे विचारोंको चित्रित करनेवाली कथाएं हैं। बाकी जो बचा उसके अध्ययनने मेरे सामने जीवनका अर्थ प्रकाशित कर दिया। इन पुस्तकोंमें मकैरियस महानकी जीवनी थी; बुद्धकी कथा थी; संत जॉन च्रीसोस्तमके उपदेश थे और कुएंमें पड़े यात्री, सोना प्राप्त करनेवाले संन्यासी, तथा पीटर भटियारेकी कथाएं थीं। उनमें शहीदोंकी कथाएं थीं और सबमें यह घोषणा की गई थी कि मृत्युके साथ जीवनका अंत नहीं होता; ऐसे लोगोंकी भी कथाएं थीं जो अशिक्षित और मूर्ख थे और चर्च की शिक्षाओंके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे, लेकिन फिर भी वे त्राण पा गये।

लेकिन ज्यों ही मैं शिक्षित और विद्वान आस्तिकोंसे मिला, अथवा उनकी पुस्तकें पढ़ीं, त्यों ही अपने विषयमें संदेह, असंतोष और निराशा-पूर्ण संघर्ष एवं विषादसे मेरा मन भर गया, और मैंने अनुभव किया कि

मैं इन लोगोंकी वाणीके अर्थमें जितना ही घुसता हूँ उतना ही मैं सत्यसे दूर जाता हूँ और अथाह खाईकी ओर बढ़ता हूँ ।

: १५ :

न जाने कितनी बार मैंने किसानोंकी निरक्षरता और पांडित्य-हीनता पर उनसे ईर्ष्या की होगी ! धर्मके लक्ष्य-संबंधी वक्तव्य मेरे लिए फिजूल और मिथ्या थे, परंतु उनको उनमें कोई झुठाई नहीं प्रतीत होती थी । वे उन्हें स्वीकार कर सकते और उस सत्यमें विश्वास करते थे, जिसमें विश्वास रखनेका मेरा भी दावा था । पर एक मैं ही अभागा और दुखिया ऐसा था जिसको साफ दिखाई दे रहा था कि इस सत्यके साथ असत्यके बड़े बारीक तार एक-दूसरेसे गुथे हुए हैं और मैं इस रूपमें सत्यको स्वीकार नहीं कर सकता ।

लगभग तीन सालतक मेरी यह अवस्था रही । शुरू-शुरूमें जब मैं ईसाई-धर्मका एक प्रारंभिक साधक व विद्यार्थी था, सत्यसे मेरा क्षीण संपर्क था और जो कुछ मुझे साफ़ मालूम पड़ता था उसका आभास मात्र मैं पा सका था तबतक यह आंतरिक संघर्ष उतना प्रबल न था । क्योंकि जब मैं किसी बातको न समझता तो कह देता—‘यह मेरा दोष है, मैं पापी हूँ ।’ लेकिन ज्यों-ज्यों मैं सत्यको अपनाता गया, और वे मेरे जीवनका आधार बनते गये त्यों-त्यों यह संघर्ष अधिकाधिक दुखदाई और पीड़ाकारी होता गया । इसके साथ ही समझनेमें अपनी असमर्थताके कारण जो कुछ मैं नहीं समझ सकता उसके और जो कुछ बिना झूठ बोले या अपनेको धोखा दिये समझा ही नहीं जा सकता उसके बीचकी रेखाएँ गहरी होती गईं ।

इन शंकाओं और पीड़ाओंके बावजूद मैं सनातन ईसाई संप्रदायको ग्रहण किये रहा । लेकिन जीवनके ऐसे सवाल उठते रहे जिनका निर्णय करना ज़रूरी था । फट्टर सनातनी चर्च इनपर जो निर्णय देता

था, वह तो धर्म-निष्ठाके उन मूलाधारोंके ही खिलाफ था जिनपर मेरा जीवन खड़ा था। इस कारण विवश होकर मुझे स्वीकार करना पड़ा कि कट्टर सनातनी संप्रदायमें रहकर सत्यकी प्राप्ति करना असंभव है। इन सवालोंने एक ग्रास सवाल इस कट्टर ईसाई संप्रदायका अन्य ईसाई संप्रदायोंके प्रति प्रकट होनेवाला दृष्टिकोण और व्यवहार भी था। चूंकि धर्ममें मेरी दिलचस्पी थी, इसलिए मैं संप्रदायोंके अनुयायियोंके संपर्कमें आता रहता था। इसमें कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, 'पुराने विश्वासी' (ऑल्ड विलीवर्स), सुधारवादों मालाक्रंस (जो कर्मकांडकी अनेक विधियोंके विरोधी थे)—मतलब सभी तरहके लोग थे। इनमें मुझे ऊंचे चरित्रके बहुतेरे ऐसे आदमी मिले जो मन्त्रमुक्त धर्मात्मा थे। मैं उनके साथ भाई-चारा स्थापित करना चाहता था—उनको अपने बंधुरूपमें ग्रहण करना चाहता था। पर कट्टर सनातनी चर्चमें स्थिति बिल्कुल विपरीत थी। जिस शिक्षाने सबको एक धर्मनिष्ठा और प्रेम-बंधनमें बांधनेका दावा किया था उसी शिक्षाके सर्वोत्तम प्रतिनिधियों ने मुझे बताया कि ये सारे आदमी असत्याचारी हैं, असत्यके बीच रह रहे हैं; उनके जीवनमें जो शक्ति दिखाई देती है, वह शैतानका प्रलोभनमात्र है और जो कुछ हमारे पास है बस वही सत्य है। मैंने यह भी देखा कि जो लोग हर बात में उनसे सहमत नहीं हैं या उनकी 'हां'-में-'हां' नहीं कर सकते वे सब इन कट्टर सनातनियों द्वारा नास्तिक और पतित समझे जाते हैं। मुझे यह भी दिखाई पड़ा कि जो लोग उनके स्वीकृत बाह्य चिह्नों और प्रतीकोंके द्वारा अपनी धर्मनिष्ठा नहीं प्रकट करते उनके प्रति ये लोग विरोध-भाव रखते हैं और यह स्वभाविक ही है। पहला कारण तो उनकी यह मान्यता है कि तुम असत्यपर हो और केवल मैं ही सत्यपर हूँ, और इससे निष्ठुर बात एक मनुष्य दूसरेसे कह नहीं सकता। दूसरा कारण यह है कि जो आदमी अपने बच्चों और भाइयोंको प्यार करता हो वह उन लोगोंके प्रति विरोध एवं शत्रुताका भाव रखे बिना नहीं रह सकता जो बच्चों और भाइयोंको भूठी धर्मनिष्ठाकी ओर ले जाना चाहते हों। फिर पौराणिक

ज्ञान जितना ही अधिक बढ़ता है, यह विरोध भाव भी उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। तब मेरे जैसे आदमीके लिए जो प्रेम द्वारा ऐक्य एवं मिलनमें सत्यकी स्थिति मानता है, यह बात त्रिल्कुल साफ़ हो गई कि धर्मविद्या ठीक उसी चीज़का विनाश कर रही है जिसका निर्माण उसे करना चाहिए था।

जब हम देखते हैं कि प्रत्येक संप्रदाय दूसरेके प्रति घृणाका भाव रखता है, केवल अपनेको ही सत्यका अधिकारी मानकर संतुष्ट है तो आश्चर्य होता है कि क्या ये लोग इतना भी नहीं देख सकते कि अगर दोनोंके दावे एक-दूसरेके विरोधी हैं तो उनमेंसे किसीमें भी पूर्ण सत्य नहीं हो सकता और धर्मनिष्ठामें पूर्ण सत्य होना चाहिए। तब मनुष्य मनको यों भुलावा देनेकी चेष्टा करता है कि कोई और बात भी होगी; इसका कुछ और मतलब होगा। मैंने भी यही समझा कि इसका कुछ और मतलब होगा और उस मतलबको पाने एवं समझनेकी कोशिश की। इस विषयपर जो कुछ भी मुझे पढ़नेको मिला, मैंने पढ़ा और जिनसे भी सलाह-मशविरा कर सकता था, किया। किसीने मुझे उसकी कोई व्याख्या नहीं सुभाई—सिवाय उस व्याख्याके जिसे माननेके कारण 'क' अपनेको ही दुनियामें सर्वश्रेष्ठ मानता है और 'ख' अपनेको। हर संप्रदायने अपने सर्वोत्तम प्रतिनिधियों द्वारा मुझे कहा कि हमारा विश्वास है कि सिर्फ़ हमोंको सत्य प्राप्त है और दूसरे सब गलत रास्तेपर हैं और हम उनके लिए सिर्फ़ प्रार्थना कर सकते हैं। मैं पुरोहितां; पादरियां, धर्माध्यक्षों और विद्यावयोवृद्ध पंडितोंके पास गया; लेकिन किसीने मुझे इसका मतलब नहीं बताया—सिवाय एक आदमी के जिसने इसकी पूरी व्याख्या मेरे सामने रखी और कुछ इस तरह रखी कि फिर आगे किसीसे पूछनेका मुझे साहस ही नहीं हुआ। मैंने कहा कि धर्मनिष्ठकी ओर आकर्षित होनेवाला प्रत्येक नास्तिक (और हमारी सारी तरुण पीढ़ी कुछ इसी तरहकी है) पहले यह सवाल करता है कि लूथर संप्रदायमें या कैथोलिक संप्रदायमें सत्य क्यों नहीं है और कट्टर सनातनी संप्रदायमें ही सारा सत्य क्यों है? आधुनिक युवक शिक्षित होनेके कारण,

किसानोंकी भांति, इस बातसे अपरिचित नहीं है कि प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक संप्रदाय भी इसी प्रकार जोरके साथ कहते हैं कि उनका ही धर्मविश्वास एकमात्र सच्चा है। ऐतिहासिक प्रमाणोंको प्रत्येक धर्म व संप्रदाय इस तरह तोड़-मरोड़कर पेश करता है कि वे इस संबंधमें कुछ सिद्ध करनेके लिए काफ़ी नहीं हैं। मैंने कहा कि क्या यह मुमकिन नहीं है कि धर्मशिक्षाओंको इससे ऊंचे और श्रेष्ठ ढंग पर ग्रहण किया जाय कि उसकी ऊंचाईसे देखनेपर ये सब विभेद और मतभेद दूर हो जायं, जैसा कि सच्चे आरास्तकोंके साथ होता भी है ? हम जिस मार्गपर चल रहे हैं, क्या उससे आगे नहीं बढ़ सकते ? क्या हम दूसरे संप्रदायवालोंसे यह नहीं कह सकते कि फलां-फलां तात्त्विक बातोंमें तो हमारे मत मिलते-जुलते हैं, तफ़सीलकी बातोंमें भले न मिलें। तात्त्विक और ज़रूरी बातोंको ग़ैर-ज़रूरी बातोंपर श्रेष्ठता देकर हम एकताका अनुभव कर सकते हैं।

उस एक आदमीने, जिसका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूँ, मेरे विचारों का समर्थन किया पर मुझसे कहा कि अगर इस तरहकी छूट दी जाती है तो धर्माधिकारियोंपर यह कलंक लगता है कि उन्होंने हमारे पूर्वजोंके साथ विश्वासघात किया। इससे धर्म-भेद फैलता है, और धर्माधिकारियोंका काम तो यूनानी-रूसी कट्टर सनातनी चर्चकी पवित्रताकी रक्षा करना है जिसे हमने पूर्वजोंसे हासिल किया है।

बस सारी बातें मेरी समझमें आ गईं। मैं एक धर्म-निष्ठाकी खोज कर रहा हूँ, जो जीवनका बल है, और वे लोग कुछ मानवीय उत्तरदायित्वों को लोगोंकी निगाहमें सर्वोत्तम ढंगसे निभानेका प्रयत्न कर रहे हैं और इन मानवीय मामलोंकी पूर्ति वे एक मानवीय ढंगसे करते हैं। चाहे वे अपने गलती करनेवाले भाइयोंपर करुणा रखनेकी कितनी ही बात करें और सर्वशक्तिमान ईश्वरके सिंहासनसे उनके लिए कितनी ही प्रार्थनाएं करें, परंतु मानवीय स्वार्थोंकी पूर्तिके लिए हिंसा आवश्यक हो उठती है, सर्वदा उसका प्रयोग हुआ है, होता है और होता रहेगा। अगर दो धर्मोंमेंसे प्रत्येक सिर्फ अपनेको ही सच्चा समझता है और दूसरेको झूठा

मानता है तो फिर लोग दूसरोंको सच्चाईकी और खींचनेके लिए अपने धर्म-सिद्धांतोंका प्रचार और उपदेश करते ही रहेंगे। अगर उनके सच्चे चर्चके अनुभवहीन बच्चों या अनुयायियोंको गलत शिक्षा दी जाती है तो फिर चर्चके पास इसके सिवा क्या चारा रह जाता है कि वह ऐसी किताबें जला दे और जो आदमी उसके बच्चोंको गुमराह कर रहा है, उसे हटा दे। ऐसे संप्रदायवादीके साथ क्या किया जाय जो सनातनी चर्चकी रायमें भ्रमात्मक धर्म-सिद्धांतोंकी आगमें जल रहा है और जो जीवनके अत्यंत महत्त्वपूर्ण मामले, यानी धर्मकी निष्ठामें चर्चके बच्चोंको गुमराह कर रहा है ? ऐसे आदमीके साथ उसे जेल भेजने अथवा उसका सिर काट लेनेके सिवा और क्या व्यवहार किया जा सकता है ? ज़ार एलेक्सिस माइखेलोविचके समयमें लोगोंको जला दिया जाता था यानी उनपर उस चक्रके सबसे कड़े डंडविधानका प्रयोग किया जाता था, और आज हमारे चक्रमें भी इस समयकी सबसे कड़ी डंड-विधि यानी एकांत कारावास* का प्रयोग किया जाता है।

तब मैंने उन बातोंपर ध्यान दिया जो धर्मके नामपर की जाती हैं और भय एवं संतापसे भर गया, और मैंने कट्टर सनातन ईसाई संप्रदाय को करीब-करीब बिल्कुल छोड़ दिया।

चर्चका दूसरा संबंध युद्ध और फ्रांसीको लेकर जीवनके एक सवालसे था।

उस वक्त रूस लड़ रहा था। और रूसी लोग, ईसाई प्रेमके नामपर, अपने मानव-बंधुओंको मारना शुरू कर चुके थे। इसके विषयमें न सोचना असंभव था और इस बातकी तरफसे आंख मूंद लेना भी असंभव था कि हत्या एक ऐसा पाप है जो हर धर्मके मूल सिद्धांतोंके विरुद्ध है। इतने पर भी हमारी फौजोंकी सफलताके लिए गिर्जोंमें प्रार्थनाएं की जाती

*जब यह लिखा गया था तब ख्याल किया जाता था कि रूससे फ्रांसीकी प्रथा उठा दी गई है।

थीं और धर्मोपदेशक हत्या करनेको धर्मनिष्ठासे ही पैदा होने वाला एक काम मानते थे। फिर युद्ध-कालकी इन हत्याओंके अलावा, युद्धके बाद के भगड़ों-टंटोंमें भी मैंने देखा कि चर्चके अधिकारियों, शिक्षकों और संन्यासियोंने गलती करनेवाले असहाय युवकोंकी हत्याका समर्थन किया। मैंने ईसाई धर्म माननेका दावा करनेवाले आदमियोंके सब कृत्योंपर ध्यान दिया और मेरा दिल दहल गया।

: १६ :

बस मेरा संदेह दूर हो गया और मुझे पूरी तरह यह विश्वास हो गया कि जिस धर्मको मैंने अंगीकार कर रक्खा है, उसमें सब सत्य ही सत्य नहीं है। शायद ऐसी हालतमें पहले मैं कहता कि वह सबका सब भूटा है, लेकिन अब मैं ऐसा भी नहीं कह सकता था। सारी जनता सत्यका कुछ-न-कुछ ज्ञान रखती है; क्योंकि बिना उसके वह जी ही नहीं सकती। फिर वह ज्ञान मेरे लिए भी प्राप्य है, क्योंकि मैंने उसकी अनुभूति की है और उसके सहारे जिंदगीके दिन भी बिताये हैं। यह सब था, पर अब मुझे कोई संदेह नहीं रह गया था कि सत्यके साथ इसमें असत्य भी है। जो बातें पहले मुझे घृणाजनक प्रतीत होती थीं वे सब फिर स्पष्ट रूपमें मेरे सामने आईं। यद्यपि मैंने देखा कि जिन भूठी बातोंसे मुझे घृणा होती है, उनका किसानोंमें चर्च व धर्म-संस्थाके प्रतिनिधियोंकी अपेक्षा कम ही मिश्रण है। पर यह तो तब भी साफ हो ही गया कि जनतःके धर्म-विश्वास में सत्यके साथ असत्य भी हुआ मिला है।

पर सवाल उठता है कि सत्य कहाँसे आया और असत्य कहाँसे आया? सत्य और असत्य दोनों पवित्र कही जानेवाली परंपरा और धर्म-ग्रंथोंमें मौजूद थे। सत्य और असत्य दोनों 'चर्च' (ईसाई-धर्म-संस्था) द्वारा लोगोंको दिये गए हैं।

और पसंदगीसे या नापसंदगीसे मुझे इन ग्रंथोका और इन परंपराओंका अध्ययन और अन्वेषण करना पड़ा—उन्हीं ग्रंथों और परंपराओं-

का जिनका अन्वेषण करनेमें अभीतक मैं इतना हिचकिचाता और डरता था ।

मैं उसी धर्म-विद्याकी प्रतीक्षा करने लगा जिसे एक दिन आवश्यक कहकर मैंने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकृत कर दिया था । पहले जब मैं चारों तरफसे जीवनकी ऐसी अभिव्यक्तियोंसे घिरा था जो मुझे स्पष्ट और विवेकपूर्ण प्रतीत होती थीं तब मुझे यह (धर्मविद्या) अनावश्यक मूर्खताओं व असंगतियोंकी एक मालिका-सी प्रतीत होती थी; अब मैं केवल उन्हीं चीज़ोंको फेंककर सुखी हो सकता था जो मेरे दिमागमें न बसती थीं । इसी शिद्दापर धार्मिक मिद्धानका आधार है या कम-से-कम इसके साथ मैंने जीवनके अर्थ एवं प्रयोजनका जो एकमात्र ज्ञान प्राप्त किया है, उसका अभेद्य संबंध है । मेरे दृढ़ और पुराने मनका यह बात चाहे कितनी ही निरर्थक प्रतीत हो, पर यही मुक्तिकी एकमात्र आशा थी । इसे समझनेके लिए बड़े ध्यान और सावधानीके साथ इसको परीक्षा करनेकी ज़रूरत थी — उस तरहका समझना नहीं जैसा मैं विज्ञानकी धारणाओंको समझता हूँ : मैं उसकी खोजमें नहीं हूँ और धर्मनिष्ठाके ज्ञानकी विशेषताओं एवं विविधताओंको देखते हुए मैं उसकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कर भी नहीं सकता । मैं हर चीज़की व्याख्या नहीं चाहता । मैं जानता हूँ कि सब वस्तुओंके प्रारंभकी भांति, सब वस्तुओंकी व्याख्या भी असीममें निहित है । लेकिन मैं इसे ऐसे ढंगसे समझना चाहता हूँ जिससे जो कुछ अनिवार्यतः अबोध्य है, उसतक मैं पहुँच सकूँ । जो कुछ भी अबोध्य है उसे मैं मानना चाहता हूँ, इसलिए नहीं कि मेरे विवेककी मांग गलत है (वह बिल्कुल ठीक है और उससे अलग होकर तो मैं कुछ भी समझ नहीं सकता) बल्कि इसलिए कि मैं अपनी बुद्धिकी सीमाओंको जानता हूँ । मैं जानता हूँ कि मेरी बुद्धि एक सीमातक ही जा सकती है । मैं इस रीतिसे समझना चाहता हूँ कि जितनी भी बातें अबोध्य हैं वे सब स्वयं अपनेको अनिवार्यतः अबोध्य रूपमें मेरे सामने पेश करें—ऐसी चीज़ोंके रूपमें नहीं जिनमें विश्वास करनेके लिए मैं विवशतापूर्वक बाध्य हूँ ।

धर्मशिक्षामें सत्य है, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है; पर यह भी निश्चित है कि उसमें असत्य है और मुझे जानना चाहिए कि कौन-सी बात सत्य है, कौन-सी असत्य; मुझे सत्य और असत्यको अलग-अलग करना चाहिए। इसी काममें मैं अपनेको लगा रहा हूँ। मुझे धर्मशिक्षामें क्या असत्य मिला, क्या सत्य मिला और किन नतीजोंपर मैं पहुंचा, इसका जिक्र मैं आगे करूंगा, जो अगर कुछ महत्त्वका हुआ और किसीने चाहा तो शायद आगे कभी कहीं प्रकाशित होगा।

सन् १८७६ ई०।

ऊपरके अध्याय मैंने लगभग तीन साल पहले लिखे थे जो छापे जायेंगे।

थोड़े दिन पहलेकी बात है कि मैं इनको फिरसे देखकर ठीक कर रहा था और उस विचारशैली और अनुभूतियोंको वापस बुला रहा था, जो ब्रांचमें इनको लिखते समय उदित हुई थीं। मुझे एक सपना दिखाई पड़ा। मैंने जो कुछ अनुभव किया था और जो कुछ वर्णन किया था, उसे इस स्वप्नने घनीभूत और संक्षिप्त रूपमें व्यक्त कर दिया। मैं समझता हूँ कि जिन लोगोंने मुझे समझा है, उनके निकट इस स्वप्नका वर्णन कर देनेसे उनके दिमागमें वे सब बातें ताज़ी हो जायेंगी जिनको मैंने इतने विस्तारसे पहले कहा है। स्वप्न इस प्रकार था:—

मैंने देखा कि मैं पलंग पर पड़ा हूँ। मैं न आराम में था, न तकलीफमें; मैं पीठके बल लेटा हुआ था। पर मैंने सोचना शुरू कर दिया कि मैं कैसे और किस चीज़ पर लेटा हूँ—ऐसा सवाल इसके पहले मेरे मनमें पैदा नहीं हुआ था। मैंने अपने पलंगकी तरफ ध्यान दिया और देखा कि मैं एक झूलनेपर लेटा हुआ हूँ। झूलनेमें दूर-दूर पर पाटियां लगी हैं जिनपर मेरा शरीर सधा हुआ है। मेरे पांच एक पाटीपर हैं और जांघकी पिडलियां दूसरी पाटीपर हैं। पांवांको आराम नहीं मिल रहा था। मुझे इसका ज्ञान-सा था कि वे पाटियां खिसकायी जा सकती हैं। मैंने उनमेंसे

एक पाटीको धकेलकर पांवके नीचे किया—शायद मैंने सोचा कि यह ज़्यादा आरामदेह होगा। लेकिन वह मेरे धक्केसे ज़रूरतसे ज़्यादा आगे खिसक गई और मैंने उसतक फिर अपना पांव पहुंचाना चाहा। इस प्रयत्नमें जांघकी पिंडलियोंके नीचे जो पाटी थी वह भी खिसक गई और मेरे पांव अधरमें झूलने लगे। मैंने अपने सारे शरीरको खिसका करके आरामके साथ लेटनेकी कोशिश की। मुझे पूरा विश्वास था कि मैं तुरंत ऐसा कर सकता हूँ; लेकिन मेरे खिसकनेसे कुछ ऐसी गड़बड़ हुई कि मेरे नीचेकी और भी पाटियां खिसककर एक-दूसरेसे उलझ गई और मैंने देखा कि सारा मामला ही बिगड़ता जा रहा है। मेरे शरीरका सारा अधो-भाग खिसककर नीचे लटक रहा था, यद्यपि मेरे पांव ज़मीनको नहीं छू रहे थे। मैं सिर्फ अपनी पीठके ऊपरी हिस्सेके सहारे लटक रहा था। इससे न सिर्फ तकलीफ हो रही थी; बल्कि मैं डर भी गया था। तभी मैंने अपने-से किसी बातके बारेमें सवाल किया जिसका पहले मुझे खयाल ही नहीं हुआ था। मैंने अपनेसे सवाल किया : मैं कहां हूँ, और मैं किस चीज़ पर लेटा हुआ हूँ ? मैंने इर्द-गिर्द देखना शुरू किया। पहले मैंने उस दिशामें दृष्टि डाली जिधर मेरा शरीर लटक रहा था और जिधर मुझे जल्द गिर पड़नेका अंदेशा था। मैंने नीचेकी तरफ देखा; मुझे अपनी आंखोंपर विश्वास न हुआ। मैं ऊंचे-से-ऊंचे मीनार और पहाड़की ऊंचाईपर नहीं, बल्कि ऐसी ऊंचाईपर था कि उसकी कल्पना भी मेरे लिए असंभव थी।

मैं यह भी समझ न सका कि उस निचाईमें, उस अतल-पातालमें मुझे कोई चीज़ दिखाई भी देती है या नहीं जिसके ऊपर मैं लटका हुआ हूँ और जिसकी तरफ मैं खिंचता जा रहा हूँ। मेरे हृदयकी शिराएं सिकुड़ने लगीं और मैं डर गया। उस तरफ देखना भी भयंकर था। जब मैं उधर देखता तो मुझे मालूम होता कि अंतिम पाटीसे भी खिसककर मैं तुरंत गिर जाऊंगा। तब मैंने उधर नहीं देखा। लेकिन न देखना और भी बुरा था; क्योंकि मैं सोचने लगा कि जब मैं अंतिम पाटी-

से खिसककर गिरूंगा, तब क्या होगा। मैंने अनुभव किया कि भयके कारण मेरा अंतिम आश्रय—अंतिम पाटी—भी खिसक रही है और मेरी पीठ धीरे-धीरे नीचेकी तरफ जा रही है। क्षण भर बाद ही मैं गिर जाऊंगा। उसी समय मुझे यह ध्यान आया कि यह सब सत्य नहीं हो सकता, यह सपना है। इससे जग जाओ! मैं अपनेको जगानेकी कोशिश करता हूँ पर जाग नहीं पाता। अब मैं क्या करूँ? अब मुझे क्या करना चाहिए; मैं इस तरह अपनेसे पूछता हूँ और ऊपरकी तरफ नजर दौड़ाता हूँ। ऊपर भी अनंत आकाश फैला हुआ है। मैं आकाशकी असीमताको देखता हूँ और नीचेकी—पातालकी अतलताको भूलनेकी कोशिश करता हूँ और मैं सचमुच उसे भूल जाता हूँ। नीचेकी, पातालकी असीमता मुझे डरा देती है; पर ऊपरकी अनंतता आकर्षित करती और बल देती है। मैं देखता हूँ कि अतलके ऊपर अब भी अंतिम पाटी मुझसे छूटी नहीं है। जानता हूँ मैं लटक रहा हूँ; लेकिन अब मैं सिर्फ ऊपरकी ओर देखता हूँ और मेरा भय दूर हो जाता है। जैसा कि सपनोंमें होता है, एक आवाज़ सुनाई पड़ती है : 'इधर देखो; यही वह है!' बस मैं अधिकाधिक अपने ऊपर अनंत आकाश देखता हूँ और मुझे अनुभव होता है कि मैं शांत एवं स्थिर हो रहा हूँ। जो कुछ घटना घटी है वह सब मुझे याद है और भी याद है कि किस तरह वह सब हुआ; कैसे मैंने अपने पांव बढ़ाये; कैसे मैं खिसककर टंग गया; मैं कितना डर गया था और किस तरह ऊपर देखनेके कारण भयसे मेरी रक्षा हुई। तब मैं अपनेसे पूछता हूँ : क्या मैं इस वक्त इसी तरह नहीं लटक रहा हूँ? मैं इर्द-गिर्द देखनेकी जगह अपने सारे शरीरसे उस आश्रय-खंडका अनुभव करता हूँ, जिसपर मैं पड़ा हुआ हूँ। मैं देखता हूँ कि अब इस तरह लटका हुआ नहीं हूँ कि गिर पडूँ, बल्कि दृढ़तापूर्वक स्थित हूँ। तब मैं अपनेसे पूछता हूँ कि मैं किस प्रकार स्थित हूँ? मैं चारों ओर टटोलता हूँ; इधर-उधर नजर दौड़ाता हूँ और देखता हूँ कि मेरे नीचे, मेरी कमरके नीचे भी एक पाटी है और जब मैं ऊपरकी ओर देख रहा हूँ तब इस पर सुरक्षित रूपसे लेटा रहता हूँ और सिर्फ यही पटी पहले भी मुझे थामे

हुए थी। तब, जैसा कि सपनोंमें होता है, मैं अपनेको स्थिर रखनेवाले साधनकी बनावटकी कल्पना करता हूँ। यह एक बड़ा स्वाभाविक, समझमें आने लायक और अच्छूक साधन है—यद्यपि जागृत व्यक्तिके लिए बनावटका कोई मतलब नहीं है। अपने स्वप्नमें मुझे आश्चर्यका अनुभव भी हुआ कि इस बातको मैं और पहले ही क्यों न समझ पाया ? मालूम पड़ा कि मेरे सिरके ऊपर एक खंभा भी है और उस पतले खंभेकी मुरदा में कोई संदेह नहीं किया जा सकता, यद्यपि उसको आश्रय या सहारा देनेवाली कोई दूसरी चीज़ नहीं है। उस खंभेसे एक दोहरा फंदा नीचे लटक रहा है और यदि मैं उस फंदेके बीचमें अपने शरीरको ठीक तरहसे रक्खूँ और ऊपर देखता रहूँ तो गिरनेका कोई अन्देशा ही नहीं हो सकता। यह सब मुझे स्पष्ट दीख रहा था। मैं प्रसन्न और स्थिर था। मुझे जान पड़ा कि कोई मुझसे कह रहा है : 'देखो, इसे याद रखना।'

बस, मैं जग गया।

सन् १८२२ ई०।

संस्मरण

भूमिका

मेरे मित्र पी० बीरूकोवने जब मेरी पुस्तकोंके फ्रांसीसी संस्करणके लिए मेरी जीवनी लिखनेका काम अपने ऊपर लिया तो उन्होंने मुझसे अपने जीवनके संबंधमें जरूरी बातें लिख भेजनेका अनुरोध किया ।

उन्होंने जो अनुरोध किया था, उसे मैं पूरा करना चाहता था, इसलिए मैं मन-ही-मन अपनी जीवनीकी रूप रेखा तैयार करने लगा । पहले-पहल मेरी स्मृति जीवनीकी अच्छाइयोंकी ओर ही दौड़ी और उन्हें जैसे उभाड़नेके लिए ही चित्रमें रंग भरनेके समान मैंने अपने चरित्रकी बुराइयां भी दीं । परंतु अपने जीवनकी घटनाओंपर अधिक गंभीरतासे विचार करते हुए मैंने देखा कि ऐसी जीवनी यद्यपि सर्वांशमें मिथ्या न होगी, परंतु वह जीवनपर गलत प्रकाश डालने और उसे गलत रूपमें रचनेके कारण—ऐसे रूपमें, जिसमें अच्छाइयोंपर तो प्रकाश डाला गया है, परंतु बुराइयोंकी ओरसे या तो आंखें ही मूंद ली गई हैं, या उनको ढकनेका प्रयत्न किया गया है—मिथ्या होगी । परंतु जिस समय मैंने अपने दोषोंको जरा भी छिपाये बिना सारी बातें सच्ची-सच्ची लिखनेका विचार किया, उस समय मैं ऐसी जीवनी पढ़कर लोगोंके मनमें क्या भावना उठेगी इसकी कल्पना करके कांप उठा । उसी समय मैं बीमार पड़ गया ।* बीमारीके समय बिस्तरपर पड़े-पड़े मेरा मन बार-बार जीवनीकी स्मृतियोंपर दौड़ता था । वे संस्मरण वास्तवमें कंपा देनेवाले थे । उस समय मुझे बिल्कुल

* ये पंक्तियां सन १९०२ में लिखी गई थीं जब टॉलस्टॉय एक लंबी भारी बिमारीके बाद स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे ।

वसा ही अनुभव हुआ जैसा कि पुश्कनने अपनी कविता “स्मृतियों” में चर्णन किया है : जब हम मरणशील प्राणियोंकी जगती पर दिन भरके बाद शांति छा जाती है, और नगरोंकी सुनसान सड़कों पर शोरोगुलके बाद अर्द्धपारभासक भूरी रात की छायाएं नाचने लगती हैं, और दिन भरकी मेहनतके प्रस.दस्वरूः निद्रादेवीका आगमन होता है, तब मेरे लिए वह समय आता है जब गंभीर नीरवता में सारी रातके उस अनिवार्य अवकाश-कालमें निद्राहीन पीड़नकी लंबी और सूनी घड़ियां आहिस्ता-आहिस्ता रेंगती हैं ।

मेरे हृदयमें पश्चात्तापकी अग्नि ज़ोरोंसे धधक उठी है,
मेरा मन खौल रहा है और मेरे थके और दुग्वते सिर में,
न जाने कितने तीखे विचारोंकी भीड़ लगी है,

और पुरानी अपयशपूर्ण तथा लजाजनक स्मृतियां नीरवताके बीच अपना कष्टकर लेखा-जोखा खोल रही हैं । मैं धृणापूर्वक अपने जीवनके इस वृत्तको देखता हूं, मैं अपनेको शाप देता हूं, ताड़ता हूं और बार-बार कांप उठता हूं, अनुतापपूर्ण आंसू मेरी आंखोंसे भर-भर गिरते हैं; पर वे मेरी दुःग्वपूर्ण गाथाकी पंक्तियां हरगिज़ मिटा नहीं सकते ।

इसमें सिर्फ आखिरी पंक्तिमें ही इतना परिवर्तन करना चाहता हूं कि ‘दुःग्वपूर्ण’ के स्थान पर ‘कलंकपूर्ण’ शब्द रख दिया जाय ।

इन्हीं भावनाओंमें डूबते-उतरते हुए मैंने अपनी डायरीमें निम्न पंक्तियां लिखीं ।

६ जनवरी १९०३

“इस समय मैं नरककी यातनाओंका अनुभव कर रहा हूं । अपने पिछले जीवनकी सारी बुराइयां मुझे याद आ रही हैं, ये स्मृतियां मेरे जीवनको विपाक बना रही हैं और मेरा पीछा नहीं छोड़तीं । लोग इस बातपर खेद प्रकट करते हैं कि मरनेके बाद मनुष्यको अपने जीवनकी घटनाएं याद नहीं रहतीं । लेकिन यह तो बड़े भाग्यकी बात है । अगर मुझे अपने भावी जीवनमें सब बुरे काम (पाप) याद रहें, जो मैंने इस जीवन-

में किये हैं, और इस समय मेरी अंतरात्मामें डंक मार रहे हैं, तो मुझे कितनी पीड़ा हो ? यह तो हो ही नहीं सकता कि मुझे अच्छी बातें ही याद रहें, क्योंकि अगर मुझे अपने पुण्यकार्य याद रहें तो अपने पाप-कार्य भी अवश्य याद रहेंगे। यह कितने भाग्यकी बात है कि मृत्युके साथ-साथ सब पिछली बातें भूल जाती हैं और केवल एक प्रकारको चेतना शेष रह जाती है जो ऐसी मालूम होती है कि मानों वह अच्छे और बुरे संस्कारों-से बनी एक वस्तु है, एक विषम भिन्न है, जिसे सम करने पर वह कम या अधिक, सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकता है।

हां, तो स्मृतियोंका नष्ट हो जाना अत्यंत आनंददायक हैं। स्मृति रहने पर तो सुखपूर्वक रहना असंभव ही हो जाता। परंतु स्मृतियां नष्ट हो जाने पर तो हम नये जीवन में एक साफ पट्टी लेकर प्रवेश करते हैं, जिस पर हम नये सिरसे अच्छा और बुरा लिख सकते हैं।

यह सच है कि मेरा सारा जीवन इस प्रकार भीषण रूपसे पापमय नहीं था। उसके केवल २० वर्ष ही खराब थे। बीमारीके समय अपने पिछले जीवनका सिंहावलोकन करते हुए मुझे ऐसा मालूम पड़ा था कि यह युग बुराइयोंसे ही भरा पड़ा था; किंतु बात ऐसी नहीं है। इस अवधिमें भी मेरे मनमें अच्छी भावनाएं उठती थीं, परंतु वे अधिक समय तक टिक नहीं पाती थीं और शीघ्र ही वासनाएं उन्हें दबा देती थीं। फिर भी अपने जीवनका सिंहावलोकन करनेसे, विशेषकर अपनी लंबी बीमारीके समय-मुझे यह साफ मालूम पड़ा कि यदि मेरी जीवनी उसी तरह लिखी गई जिस तरह अधिकतर जीवनियां लिखी जाती हैं, जिसमें मेरे दोषों, अपराधों और नोच कर्मोंके संबंधमें कुछ भी न कहा गया हो, तो वह जीवनी झूठी होगी। अतः यदि मेरी जीवनी लिखी ही जाये, तो उसमें सारी बातें सच्ची-सच्ची प्रकट होनी चाहिए। ऐसी ही जीवनी लिखी जाने पर, चाहे उसे लिखनेमें लेखकको कितनी ही लज्जा क्यों न लगे, पाठकोंके लिए वह लाभप्रद हो सकती है। अपने जीवन पर इस दृष्टिसे विचार करते हुए, अर्थात् पाप और पुण्यकी दृष्टिसे विचार करते हुए मैंने देखा कि मैं अपने जीवनको

चार भागोंमें बांट सकता हूँ। प्रथम चौदह साल तककी आयुका (विशेषकर आगेके जीवनकी तुलनामें) भोला-भाला, आनंदमय और काव्यपूर्ण बाल्यकाल, तत्पश्चात् उसके बादके भयानक बीस वर्ष, जो सिर्फ महत्वाकांक्षा, दुरभिमान और दुर्वासनाओंमें व्यतीत हुए। उसके बाद विवाहसे लेकर मुझे आत्मज्ञान हने तकके १८ वर्ष। यह काल संसारी दृष्टिसे नैतिक कहा जा सकता है, अर्थात् इन १८ वर्षोंमें मैंने उचित रूपसे और ईमानदारीसे गार्हस्थ्य-जीवन बिताया। यद्यपि इन वर्षोंमें मैं अपने परिवारकी हितचिन्ता करने, अपनी संपत्ति बढ़ाने, साहित्यिक-क्षेत्रमें उन्नति करने तथा सब तरहका आनंद लूटनेमें ही मग्न रहा, परंतु मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसका समाज निंदा करता हो या जिसे बुरा कहता हो। अंतमें बीस वर्षका वह काल है जिसमें मैं रह रहा हूँ और जिसके भीतर ही मुझे आशा है कि मैं मर जाऊंगा। इसी कालके जीवनके दृष्टिकोणसे मैं अपने अतीत पर विचार करता हूँ और इसमें केवल उन बुराइयोंके बुरे प्रभावोंको दूर करनेके सिवाय जिनका आदी मैं पिछले सालोंसे हो गया था, मैं ज़रा भी परिवर्तन करना न चाहूंगा।

यदि ईश्वरने मुझे ज़िंदगी और शक्ति दी तो मैं इन चारों कालोंकी त्रिलकुल सर्ची कहानी लिखूंगा। मैं समझता हूँ कि मेरे ग्रन्थोंकी बारह जिल्दोंमें जो कलापूर्ण बकवास भरी हुई है और जिसे लोग आवश्यकता से अधिक महत्व देते हैं, उसकी अपेक्षा मेरी यह जीवनी अपनी कमियोंके चावजूद लोगोंके लिए ज्यादा लाभप्रद होगी।

अब मैं यही काम करना चाहता हूँ। पहले मैं अपने आनंदमय बाल्यकालके संबंधमें कुछ कहूंगा, जो मुझे विशेषरूपसे आवर्षित करता है। उसके बाद, चाहे मेरे लिए कितना भी लज्जाप्रद क्यों न हो, मैं अपने जीवनके दूसरे कालके २० वर्षोंकी भयानक कथा बिना कुछ छिपायेहुए कहूंगा।

* उस समय, अर्थात् जनवरी १९०३ तक, टॉलस्टॉयकी वे रचनाएं जिन्हें रूसमें प्रकाशित करनेकी आज्ञा मिल चुकी थी, बारह भागोंमें प्रकाशित हो चुकी थीं। धर्म, समाजकी समस्याएं, युद्ध और हिंसा आदि पर लिखी पुस्तकें आम तौरपर सेन्सरों द्वारा दबा दी गई थीं।

बाद मैं तीसरे कालके विषयमें लिखूंगा, जो अन्य कालोंकी अपेक्षा कम रोचक है। अतमें मैं अपने चौथे कालके विषयमें लिखूंगा। इस कालमें मेरी आखें खुलीं, मैंने सत्यको पहचाना और मुझे जीवनकी सबसे बड़ी अच्छाई और प्रतिदिन निकट आती हुई मृत्युके प्रति आनन्दमय शांति प्राप्त हुई।

पुनरुक्ति दोषसे बचनेके लिये अपने बाल्यकालके संवधमें मैंने जो कुछ लिखा है उसे दुबारा पढ़ लिया है। मुझे दुःख है कि मैंने इसे क्यों लिखा। जो यह सब मैंने लिखा है बहुत बुरा लिखा है और (यदि साहित्यिक भाषामें कहें तो) सच्चे हृदयसे, ईमानदारीसे नहीं लिखा गया। लेकिन इसका कोई उपाय भी नहीं था। क्योंकि पहली बात तो यह कि अपने बचपनका हाल लिखनेके बजाय मैंने अपने बचपनके मित्रोंका हाल लिखना सोचा था और इसके फल-स्वरूप उसमें मेरे और उनके बाल्यकालकी घटनाओंका एक बेजोड़ मिश्रण हो गया। दूसरे जिस समय यह लिखा गया, उस समय मेरी अपनी स्वतंत्र वर्णन-शैली कोई भी नहीं थी और मुझ पर दो लेखकों (स्टर्न) और टौफर* का बहुत प्रभाव था।

विशेष रीतिसे मैं अंतिम दो भाग, 'किशोरावस्था' और 'युवावस्था' से अप्रसन्न हूँ। इनमें एक तो तथ्य और कल्पनाका अनुचित सम्मिश्रण है और दूसरे ईमानदारीकी भावना व्याप्त है। उस समय मैं जिसे—अपनी लोकतंत्रवादी प्रवृत्तिको—उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण नहीं मानता था, उसे उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण चित्रित करनेकी भावना व्याप्त है। मुझे आशा है कि अब मैं जो कुछ लिखूंगा वह अच्छा होगा और विशेष रीतिसे अन्य लोगोंके लिए अधिक उपयोगी होगा।

[टास्टरॉय अपनी आत्मकथा लिखनेका इरादा कभी पूरा नहीं कर सके। अपने संस्मरणोंके अलावा, जो सन् १८७८ में प्रकाशित हुए थे, वे जो कुछ लिख कर छोड़ गये, उनमेंसे कुछ सुंदर अंश यहां दिए जाते हैं।—संपादक]

* लॉरेस स्टर्न (१७१३-६८) अंगरेजी उपन्यास-लेखक। रोडोल्फ टौफर (१८६१-१८४६), स्विस उपन्यासकार और कलाकार।

संस्मरण

मेरी दादी पेलागेया निकोलेवना (टॉलस्टॉय) उस अंधे राजकुमार निकोलस इवानेविच गोर्शाकोवकी लड़की थी, जिन्होंने अपार संपत्ति जोड़ रखी थी। दादीके संबंधमें मुझे जितना याद है, उससे मैं कह सकता हूँ कि उनमें थोड़ी बुद्धि थी और उनकी शिक्षा भी थोड़ी ही हुई थी। अपने वर्गकी अन्य महिलाओंकी तरह वह भी रूसी भाषाकी अपेक्षा फ्रेंच अच्छी तरह जानती थीं (यह उनकी शिक्षाकी सीमा थी)। पहले उनके पिताने, फिर उनके पतिने, और बाद में, जहांतक मुझे याद पड़ता है, उनके लड़केने उन्हें बिल्कुल बिगाड़ दिया था। लेकिन कुटुंबके सबसे बड़े-बूढ़े व्यक्तिकी पुत्री होनेके कारण सभी उनका सम्मान करते थे।

मेरे दादा (उनके पति) भी, जहां तक याद है, मामूली बुद्धिके, बड़े नम्र, हंसमुख और केवल उदार ही नहीं, बल्कि बड़े उड़ाऊ और साथ ही बड़े विश्वासी और श्रद्धालु व्यक्ति थे। वेलेव्स्की जिलेमें स्थित पाल्येनी (यासनाया पोल्याना नहीं) में उनकी जागीर पर बहुत दिनोंतक जल्सां, दावतों, नाटकों, नाच-गानों और पार्टियोंकी धूम रही। लेकिन बड़े-बड़े दाव लगाकर ताश खेलने और हर एक आदमीको मुक्तहस्तसे कर्ज या दान देनेकी आदतके कारण और बादमें घरेलू भगड़ोंके फलस्वरूप उन्होंने अंतमें अपनी पत्नीकी विशाल जागीर पर कर्जा चढ़ा लिया, उनके पेटके भी लाले पड़ने लगे और अन्तमें उनको कज़ानकी गवर्नरीके लिए अर्जा देनी पड़ी और वह पद स्वीकार करना पड़ा। यह पद ऐं साथ जो उनके जैसे ऊंचे कुल और उच्च पदाधिकारियोंसे संबंध रखनेवाले व्यक्तिको मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं थी।

यद्यपि उस समय घूस लेना एक साधारण बात थी, लेकिन मैंने सुना है कि (शराबके ठेकेदारोंके सिवा) उन्होंने किसीसे घूस नहीं ली । यही नहीं, जत्र कभी उनके सामने इस तरहका प्रस्ताव रखा जाता था, तो वह नाराज होते थे । लेकिन मैंने यह भी सुना है कि मेरी दादी, मेरे दादाको बिना बताये, रुपया ले लिया करती थीं ।

कज्ञानमें मेरी दादीने अपनी छोटी लड़की पेलागयाका विवाह यशकावकं साथ कर दिया था । उनकी बड़ी लड़कीकी शादी पीटसेबगोके काउंट ऑस्टन-सेकन के साथ हो चुकी थी ।

कज्ञानमें अपने पतिकी मृत्यु होनेके बाद और मेरे पिताका विवाह हो जानेके बाद मेरी दादी यास्नाया पोल्यानामें मेरे पिताके साथ रहने लगीं, जहां उनके बुढ़ापेके दिनोंकी मुझे अब भी अच्छी तरह याद है ।

मेरी दादी मेरे पिताको और अपने पोतां अर्थात् हम लोगोंको बहुत प्यार करती थीं और हमारे साथ अपना मनोविनोद कर लेती थीं । वह मेरी बुआओंसे भी बहुत प्रेम करती थीं, लेकिन मेरा खयाल है वह मेरी माताको ज्यादा नहीं चाहती थी, क्योंकि वह उन्हें मेरे पिताके लिए योग्य नहीं समझती थीं । यही नहीं पिताजीका मेरी माताके लिए जो बहुत ज्यादा प्रेम था उससे उन्हें ईर्ष्या होती थी । नौकरोंके साथ उन्हें कड़ा बर्ताव करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती थी, क्योंकि हर एक आदमी यह जानता था कि वह घरभरमें सबसे बड़ी हैं, इसलिए उन्हें खुश रखनेकी कोशिश करता था । परंतु अपनी नौकरानी गाशा पर वह बहुत अत्याचार करती थीं और उससे यह आशा किया करती थीं कि उससे जो काम न कहा गया हो, वह उसे भी कर रखे । वह उसे तानेमें 'आप' कहकर । पुकारा करती थीं और नानाप्रकारसे दुख देती थीं । गाशा (अगफया निखायलोवना) को मैं अच्छी तरह जानता था और यह एक विचित्र बात थी कि उसने भी मेरी दादी का स्वभाव स्वयं ग्रहण कर लिया था और दादीकी सेवामें रहने वाली छोटीसी लड़कीको तथा उनकी बिल्लीको उसी रीति दुख दिया करती थी, जिस प्रकार मेरी दादी उसे दुःख देती थी ।

मास्को जाने और वहां रहनेसे पहले मुझे अपनी दादीकी तीन बातें अच्छी तरह याद हैं। पहली बात उनका कपड़े आदि धोनेका तरीका था। वह अपने हाथों पर एक खास तरहके साबुनसे बहुत-सा भाग उठा लेती थीं, और मैं समझता हूँ कि वही अकेली ऐसा कर सकती थीं। जब वह कपड़े धोती थीं तो हमें खास तौर पर उनका कपड़े धोना देखनेको लेजाया जाता था। संभवतः साबुनके भागों पर हमारा खुश होना और अचंभेसे भर उठना देखकर उन्हें भी आनंद होता था। उनकी सफेद टोपी, उनकी जाकट, उनके बूटे सफेद हाथ और उनपर उठे हुए अमंख्य भाग एवं एक सन्तोषपूर्ण मुस्कानसहित उनका सफेद मुँह मुझे आज भी याद है।

दूसरी बात उनका बिना घोड़े की पीली गाड़ीमें बैठकर पासके छोटे जंगलमें अखरोट बीनने जाना था, जिनकी उस साल इफरातसे पैदावार हुई थी। बिना घोड़ेकी उस गाड़ीको मेरे पिताके सईस खींचकर ले जाते थे। इसी गाड़ीमें हम लोग भी अपने शिक्षक फीडर इवानोविचको साथ लेकर घूमने जाया करता थे। उन घनी और आस-पास उगी हुई झाड़ियों की मुझे अब भी याद है जिनके बीचसे मेरे पिताके सईस पेट्रशका और मत्यूशा उस गाड़ीको, जिसमें मेरी दादी बैठी रहती थीं, खींच ले जाते थे और किस प्रकार वे अखरोटके गुच्छोंसे लदी हुई टहनियोंको जिनमें बहुतसे पके हुए अखरोट अपने छिलकोंसे निकल-निकल कर गिर रहे होते थे, उनतक झुका देते थे। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार मेरी दादी उन्हें तोड़तीं और अपने थैले में डालती जाती थीं, और किस प्रकार हम बच्चे भी कुछ टहनियां झुकाकर उसी प्रकार खुश होते थे जिस प्रकार फीडर इवानोविच मोटी-मोटी टहनियां झुकाकर हमें अपने बलसे चकित कर देते थे। हम चारों तरफ हाथ लपका कर अखरोट तोड़ते और जब फीडर इवानोविच टहनियोंको छोड़ देते और वे फिर पहलेकी स्थितिमें पहुंच जातीं उस समय हम देखते थे कि अब भी बहुतसे अखरोट उनमें लगे रह गये हैं, जिन्हें हमने नहीं देखा। मुझे याद है कि जंगलके खुले भागमें कितनी गर्मी और वृक्षोंकी छायामें कितनी ठंडक होती थी।

अखरोटकी पत्तियोंकी तीखी गंध और किस प्रकार हमारी नौकरानियां अखरोटोंको दांतोंसे कड़कड़ाकर खाती थीं, और हम स्वयं भी बराबर मुंह चलाते हुए ताजे मधुर सफेद गूदेको खाते जाते थे, यह सब बातें मुझे अब भी याद हैं ।

हम अपनी जेबोंमें, गोदमें और गाड़ीमें अखरोट भर लेते थे । दादी हमें अंदर बुला लेती और हमारी तारीफ करती थीं । हम घर किस प्रकार लौटते थे, और घर लौटने पर क्या होता था, यह सब मुझे ज़रा भी याद नहीं । मुझे तो सिर्फ़ दादी, अखरोटके जंगलका खुला भाग, अखरोटके वृक्षोंकी पत्तियोंकी तीखी गंध, दोनों सईस, पीली गाड़ी तथा सूर्य सबकी एक संयुक्त सुखद याद है । मुझे ऐसा मालूम होता है कि जिस तरह साबुनके भाग वहीं उठ सकते थे जहां मेरी दादी हो, उसी प्रकार भाड़ियां, अखरोट, सूर्य तथा अन्य चीजें भी वहीं हो सकती थीं, जहां मेरी दादी पीली गाड़ीमें बैठी हो, और पैट्रशका और मत्यूशा उसे खींच रहे हों ।

सबसे ज्यादा याद मुझे उस रातकी है जो मैंने अपनी दादीके सोनेके कमरेमें लेव स्टीपेनिशके साथ बिताई थी । लेव स्टीपेनिश एक अधा कहानी सुनानेवाला था । (जिस समय मैंने उसे जाना वह बूढ़ा हो चुका था ।) वह मेरे दादाकी प्रभुताके दिनोंकी यादगार था । वह एक दास था जिसे खरीदा ही इसलिये गया था कि वह कहानियां सुनाए । अंधोंकी स्मरण शक्ति बड़ी तेज होती है और एक या दो बार कोई कहानी सुन लेने पर वह उसे शब्दशः याद हो जाती थी ।

वह मकानके ही किसी हिस्सेमें रहता था, लेकिन दिन भर दिखाई नहीं पड़ता था । शाम होते ही वह मेरी दादीके ऊपरके सोने वाले कमरेमें आ जाता । (यह एक नीचा और छोटसा कमरा था जिसमें जानेके लिए सीढ़ियां उतरनी पड़ती थीं ।) वह कमरेमें खिड़की पर बैठ जाता जहां उसके लिए मालिककी थालीका बचा हुआ भोजन ला दिया जाता था । वहां वह मेरी दादीका इंतजार किया करता था । मेरी दादी उसके अंधे होनेके कारण उसके सामने ही कपड़े बदल लिया करती थीं । उस दिन जब दादीके कमरेमें

रात बितानेकी बारी थी, वह लंबा गहरे नीले रंगका कोट पहने हुए खिड़की पर बैठ खाना खा रहा था । मुझे याद नहीं कि मेरी दादीने कहा पर कपड़े बदले, उसी कमरेमें या दूसरे कमरेमें या मैं किस प्रकार विस्तर पर सुलाया गया । मुझे केवल उस क्षणकी याद है जब कि मोमबत्ती बुझा दी गई और एक छोटा लैंप सुनहरी मूर्तियोंके सामने जलता छोड़ दिया गया । मेरी दादी, वह वरामती दादी, जो साबुनके आश्चर्यजनक भाग उठाया करती थीं, सिरसे पैरतक सफेद कपड़े पहने हुए बर्फके समान श्वेत बिछौने पर, सफेद ही चादर ओढ़े और सिर पर सफेद ही टोपी दिये ऊंचे तकियेके सहारे लेटी थीं । उसी समय खिड़कीसे लेव स्टीपेनिश की शांत और मीठी आवाज़ आई, “क्या मैं कहानी शुरू करूं ?” “हां, शुरू करो ।” लेव स्टीपेनिशने अपनी शांत, साफ और गंभीर आवाज़में अपनी कहानी आरंभ की । “प्रिय बहन, उसने कहा, हमें उन सुंदर और रोचक कहानियोंमें से एक कहानी सुनाओ जिन्हें तुम इतनी सुंदरता के साथ सुनाती हो ।” शहरजादीने उत्तर दिया—“बड़े शौक से । अगर आपके स्वामी मुझे आज्ञा दे तो मैं राजकुमार कमरलज़मन की कहानी सुनाऊं ।” सुल्तानकी स्वीकृति मिल जाने पर शाहजादीने इस प्रकार अपनी कहानी आरंभ की—“किसी राजाके एक ही लड़का था. . . .।” इसी प्रकार लेव स्टीपेनिशने भी राजकुमार कमरलज़मनकी कहानी उसी प्रकार अन्तराशः कह सुनाई, जैसी कि किताबमें थी । मैं न तो कुछ समझता था, न सुनता था । मैं तो सफेद वस्त्रोंमें अपनी दादीकी रहस्यमयी मूर्ति और दीवार पर पड़ती हुई उनकी धुंधली छाया तथा सफेद ज्योतिहीन आंखोंवाले वृद्धको देखनेमें ही डूबा रहता था । उस वृद्धको यद्यपि मैं इस समय नहीं देखता, परंतु उसकी खिड़कीमें बैठी हुई मूर्ति जिसके मुंहसे कुछ अजीब शब्द निकल रहे थे और वे शब्द उस अंधेरे-से कमरेमें, जिसमें केवल एक ही लैंप टिमटिमा रहा था, अत्यंत एकरस मालूम होते थे, अब भी मेरी आंखोंके सामने नाच रही है । शायद मैं लेटते ही सो गया था; क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई भी बात मुझे याद नहीं है । परंतु सवेरे ही

दादीके हाथों पर कपड़े धोते समय साबुनके भागोंको देखकर मुझे फिर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता हुई ।”

* * * *

अपने नानाके संबंधमें टॉल्सटॉय ने बताया है:—

अपने नानाके विषयमें तो मुझे इतना याद है कि प्रधान सेनापतिका ऊंचा पद प्राप्त करनेके कुछ ही दिन बाद वह पोटेम्किनकी भतीजी और रखेली वारवरा एंजिलहारटसे विवाह करनेसे इन्कार कर देने पर उस पदसे हटा दिये गये । पोटेम्किनके इस प्रस्ताव पर उन्होंने उत्तर दिया—“पोटेम्किनके मनमें किस प्रकार यह विचार उठा कि मैं उस वेश्यासे शादी कर लूंगा ?”

राजकुमारी कैथरीन डिट्रीवना ट्रुबेट्स्केसे विवाह करनेके बाद मेरे नाना उन्हींकी जागीर यास्नया पोलयानामें (जो राजकुमारी को अपने पिता सर्जे फिडोरोविचसे मिली थी) रहने लगे ।

राजकुमारी एक कन्या—मारया—को छोड़कर शीघ्र ही परलोक सिधार गई । अपनी उस प्यारी पुत्री और उसकी फ्रांसीसी सहेलीके साथ मेरे नाना अपनी मृत्युतक (सन् १८२१ तक) वहीं रहे । वह बड़ा कड़ा काम लेने वाले मालिक समझे जाते थे, लेकिन मैंने कभी उनकी क्रूरताकी एक भी घटना या नौकरोंको उतना कठोर दंड देनेकी बात नहीं सुनी जितना उन दिनों दिया जाता था । मैं यह जानता हूँ कि उनकी जागीर पर ऐसी बातें होती थीं, लेकिन घरके और खेत पर काम करने वाले दासोंके मनमें जिनसे मैंने कई बार इस विषयमें प्रश्न किया, उनकी महत्ता और चतुरता के लिये इतना रग्मान था कि मैंने अपने पिताकी बुराई तो सुनी लेकिन अपने नानाकी बुद्धिमत्ता, प्रबंध-कुशलता, तथा घरके और खेतोंपर काम करने वाले दासोंके, विशेषकर घरमें काम करने वालोंके, मामलोंमें उनकी अत्यधिक दिलचस्पीके लिये सबके मुंहसे तारीफ ही सुनी । उन्होंने घरेलू दासोंके लिए काफी मकान बनवा दिये और इस बात पर भी हमेशा ध्यान रखवा कि उन्हें पर्याप्त भोजन, वस्त्र और आमोद-प्रमोदका सामान

मिलता रहे । छुट्टीके दिन वह उनके लिए भूलों, नाच-रंग (ग्रामीण-नृत्य) तथा अमोद-प्रमोद का भी प्रबंध करते थे ।

उस समयके प्रत्येक बुद्धिमान भूमिपतिके समान वह खेत पर काम करने वाले दासोंकी भलाई और बढ़तीके लिए बहुत चिंतित रहते थे । उनके समयमें ये दास इसलिए फूले-फले कि मेरे नानाके बड़े पद पर होनेके कारण पुलिसवाले उनका बड़ा आदर करते थे और इसीलिए दासोंको अधिकारियोंकी ज्यादातियोंसे बच निकलनेका अवसर मिल जाता था ।

वह सौंदर्यके बहुत प्रेमी थे और यही कारण है कि उनके सारे मकान न सिर्फ अच्छे बने हुए और आरामदेह थे, बल्कि बहुत सुंदर और सजे हुए थे । मकानके सामने उन्होंने जो बाग लगवाया था वह बहुत ही सुंदर व सुहावना था । शायद उन्हें संगीतसे भी बहुत प्रेम था; क्योंकि उन्होंने केवल अपने तथा मेरी माताके लिये एक छोटी, परंतु सुंदर संगीत-मंडली जोड़ रखी थी । मुझे याद है कि बाग में जहां नीबूके पेड़ोंकी कतारें मिलती थीं, एक बड़ा पेड़ खड़ा था जिसका तना इतना मोटा था कि तीन आदमी एक साथ उसके चारों ओर लिपट सकते थे । उसी पेड़के नीचे संगीतज्ञोंके बैठनेके लिए बेंचे और मेजें पड़ी हुई थीं । किसी दिन प्रातःकाल मेरे नाना बागमें घूमने निकल जाते और गाना सुनते । उन्हें शिकार करना अच्छा नहीं लगता था । वे फूलों और पौधोंके बड़े प्रेमी थे ।

भाग्य-चक्रसे एक दिन वह उसी वारवारा ऐञ्जिलहाटके संपर्कमें आये, जिसके साथ विवाह करनेसे इंकार कर देनेके कारण उनका सैनिक जीवन नष्ट हुआ था । उसने राजकुमार सर्जी फीडोरोविच गोलिटसिन से विवाह कर लिया था, जिसे इस विवाहके उपलक्षमें सब प्रकारका मान और सम्मान मिला था । मेरे नाना सर्जी फीडोरोविच और फलतः वारवारा ऐञ्जिलहाटके इतने निकट संपर्कमें आये कि मेरी माताकी सगाई बचपनमें ही उन दोनोंके दस लड़कोंमें से एकके साथ हो गई और दोनों राजकुमारोंने अपने-अपने परिवारके चित्र (जो उनके दासोंद्वारा बनाये गये थे) परस्पर एक-दूसरेको दिये । गोलिटसिन परिवारके ये सब चित्र हमारे पास हैं ।

इनेमें सर्जी फीडोरोविच का एक चित्र है, जिसमें वह सेट-पेण्डू के आर्डर का रिबन पहने हुए हैं तथा सुसंगठित देह और लाल केशोंवाली वारबारा ऐन्जिलहार्टका चित्र भी है। परंतु मेरी माताकी सगाई विवाह-रूपमें परिणत न होनी थी, क्योंकि राजकुमार विवाहसे पहले ही तेज बुखारके कारण परलोक सिंघार गये।

* * * *

माताजी की मुझे जरा भी याद नहीं। जिस समय मैं डेढ़ सालका था उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। संयोगसे उनका कोई चित्र भी सुरक्षित नहीं रक्खा गया, अतः मैं उनकी मूर्तिकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन यह भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब मेरे मनमें उनकी अशारीरी कल्पना है और मैं जितना भी कुछ उनके विषयमें जानता हूँ, सुंदर है। मैं समझता हूँ कि मेरी यह धारणा इसलिए नहीं बनी है कि उनके विषयमें जिस किसीने जो कुछ भी कहा उनकी अच्छी ही बातें बतानेकी कोशिश की; बल्कि इसलिये कि उनमें वास्तवमें कुछ ठोस गुण और अच्छाइयाँ थीं।

मेरी माता सुंदरी तो नहीं थी, परंतु अपने समयकी दृष्टिसे वह अच्छी पढ़ी-लिखी थीं। रूसी भाषाके साथ (जिसे वह उस समयकी प्रथाके विरुद्ध भी शुद्ध लिख सकती थीं) वह फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी और इटालियन चार भाषायें जानती थी और ललित कलाओंके लिए भी उनके हृदयमें अवश्य प्रेम रहा होगा। वह पियानो बहुत अच्छी तरह बजाती थीं और उन्हींकी समान अवस्थावाली स्त्रियोंने मुझे बताया है कि वह बड़ी रोचक कहानियाँ सुनाया करती थीं। वह कहानियाँ गढ़ती जाती थीं और सुनाती जाती थीं। उनके नौकरोंके कथनानुसार यद्यपि उन्हें जल्दी गुस्सा आ जाता था, लेकिन उनका सबसे बड़ा गुण यही था कि उनमें आत्मसंयम बहुत था। “गुस्सेसे उनका चेहरा तमतमा उठता था और वह चीखने-चिल्लाने भी लगती थीं”—उनकी नौकरानी का कहना है—“परंतु उन्होंने कभी कोई अपशब्द मुंहसे नहीं निकाला; वह कोई अपशब्द या गाली जानती ही न थीं।”

मेरे पिताजी और मेरी बुआओं को उन्होंने जो पत्र लिखे थे, उसमें

से कुछ पत्र और मेरे सबसे बड़े भाई निकोलेन्काके आचार-विचार की जो डायरी वह रखती थी, वह मेरे पास है। जिस समय उनकी मृत्यु हुई मेरे बड़े भाईकी आयु ६ वर्ष थी। मैं समझता हूँ कि शकल-सूरतमें हममेंसे सबकी अपेक्षा वह माताजीसे अधिक मिलते-जुलते थे। उन दोनोंका एक गुण मुझे बहुत प्रिय है। कम-से-कम माताजों के पत्रोंसे तो यही भूलकता है कि उनमें यह गुण था और मुझे मालूम है कि यह गुण मेरे भाईमें तो था ही। दोनोंमें यह गुण था कि दूसरे उनके प्रति क्या विचार रखते हैं, इसकी ओर से वे उदासीन रहते थे। उनमें लज्जा और संकोच तो इतना अधिक था कि वे अपनी मानसिक और नैतिक श्रेष्ठता तथा उच्चशिक्षा भी दूसरोंसे छिपानेकी कोशिश करते थे। वे गुणों पर लजित होतेसे प्रतीत होते थे।

मेरे भाईके लिए तुर्गनेवने ठीक ही लिखा है कि वह उन दोषोंसे परे थे, जो एक बड़ा लेखक होनेके लिए जरूरी हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अंतिम गुण उनमें स्पष्ट रूपमें था।

मुझे याद है कि किस प्रकार एक बेवकूफ और नीच आदमी ने, जो गवर्नरका सहायक था, और जो मेरे भाईके साथ शिकार खेल रहा था, मेरे सामने ही मेरे भाई की खिल्ली उड़ाई, और किस प्रकार मेरे भाईने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। उसके खिल्ली उड़ानेमें भी उन्हें आनंद मिला था।

माताजीके पत्रोंमें भी मैंने यही गुण पाया है। शायद टाटिआना एलेक्जेंड्रोवना एगॉल्स्की को छोड़कर जिनके साथ मैंने अपना आधा जीवन बिताया, और जो वास्तवमें अद्भुत नैतिक गुणवाली महिला थीं, मेरी माता निश्चय ही मेरे पिता और उनके परिवारवालोंमें सबसे अधिक नैतिक गुणवाली थीं।

इसके अलावा दोनोंमें एक खास गुण और था, और वही दूसरे लोगोद्वारा अपनी निंदाके प्रति उनकी उदासीनता का कारण था। वह गुण यह था कि वे कभी दूसरोंको दोष नहीं देते थे। कम-से-कम मेरे भाईमें

तो, जिनके साथ मैंने आधा जीवन व्यतीत किया, यह गुण अवश्य था। किसी व्यक्तिके प्रति अपनी उदासीनता वह बहुत हलकी और मीठी चुटकी (व्यंग) तथा हलकी और मीठी मुस्कराहटद्वारा व्यक्त करते थे। यही बात मैंने माताजीके पत्रोंमें पाई है और उन लोगोंके मुंहसे भी सुनी है जो उन्हें जानते थे।

मेरी मातामें एक तसरा गुण, जो उन्हें उनके आसपास रहने वाले लोगोंसे ऊपर उठाता है, उनके पत्रोंमें प्रकट उनकी सादगी और सच्चाई थी। उन दिनों बहुत बना-चुना कर हृदयके भाव प्रकट करनेका रिवाज-सा हो गया था। अपने परिचितोंमें अनेक संवाधन चल पड़े थे, और उनमें जितनी ज्यादा अतिशयोक्ति होती थी, उतनी ही कम सच्चाई होती थी।

यह गुण तो मेरे पिताके पत्रोंमें भी पाया जाता है, लेकिन बहुत अधिक मात्रामें नहीं। वह लिखते थे—“मेरी परम-मधुर-सगिनी ! मैं हर समय तुम्हारे साथ रहने के आनंदका ही स्वप्न देखता रहता हूँ।” इसमें मुश्किल से ही कुछ सच्चाई है। परंतु मेरी माता सदा एक ही प्रकारसे—“मेरे अच्छे मित्र !” लिखती थीं। एक पत्रमें तो वह साफ लिखती हैं:—“आपके बिना दिन पहाड़के समान लगते हैं यद्यपि यदि सच-सच लिखूं तो जब आप यहां होते हैं तो हमें आपके साथ रहनेसे बहुत आनंद नहीं मिलता।” पत्रके अंतमें वह हस्ताक्षर भी उसी प्रकार किया करती थीं—“आपकी उपासिका मेरी”।

माताजीका बाल्यकाल कुछ तो मास्कोमें और मेरे सुयोग्य, गुणी और गर्वले नानाके साथ गांवमें बीता। मुझे बताया गया है कि वह मुझे बहुत चाहती थीं और मुझे ‘मेरे प्यारे बेंजामिन’ कहकर बुलाया करती थीं।

मैं समझता हूँ कि उस व्यक्तिके प्रति जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी और जो बादमें मर गया था, उनका प्रेम वैसा ही रहा होगा, जैसा कि एक लड़की अपने जीवनमें केवल एक बार ही अनुभव करती है। पिताजी के साथ माताजीकी शादी उनके और पिताजीके संबंधियोंने ही तय की थी। मेरी माता धनी थी, यौवनका प्रथम चरण पार कर चुकी थी और अनाथ

हो चुकी थीं। पिताजी हंसमुख और ऊंचे कुलके युवक थे, परन्तु उनकी सारी संपत्ति उनके पिता इल्या टॉल्स्टॉयने पूरी तरहसे नष्ट कर दी थी। उसको उन्होंने इस तरह चौपट कर दिया था कि पिताजीने बादमें उसे लेने से भी इन्कार कर दिया। मैं समझता हूँ कि माताजीका मेरे पिताजी पर गूढ़ प्रेम नहीं था, वह उनसे पतिके नाते तथा अपने बच्चोंके पिताके नाते प्रेम करती थीं। जहां तक मुझे मालूम है वह तीन-चार व्यक्तियोंसे ही प्रेम करती थीं। गोलिट्सिनके मृत पुत्रसे, जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी, उनका विशेष प्रेम था। फिर उनकी विशेष मित्रता अपनी फ्रांसीसी सहेली श्रीमती हेनीशीन के साथ थी जिनके संबंधमें मैं अपनी चाचियोंके मुंह से सुना करता था। वह मित्रता मालूम पड़ता है बादमें टूट गई। श्रीमती हेनीशीनने मेरी माताके एक संबंधी राजकुमार माइकेल ऐलेक्जेंड्रोविच वोल्कान्स्कीसे विवाह कर लिया था, जो वर्त्तमान लेखक वोल्कान्स्कीके पिता थे।

तीसरे मेरे बड़े भाई कोको (निकोलस) पर उनका सब से अधिक प्रेम था। वह सबेरे से शाम तक जो कुछ करते, उसे एक डायरी में रूसी भाषा में लिखती जाती और फिर उन्हें पढ़कर सुनाती थी। इस डायरी से दो बातें साफ भल्लकती हैं। एक तो उन्हें अपने पुत्रको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देने की भारी उत्कंठा थी, परंतु वह स्वयं यह नहीं जानती थीं कि अच्छी-से-अच्छी शिक्षा कैसी होनी चाहिए। वह उन्हें, उदाहरणार्थ, बहुत भावुक होने और जानवरों को पीड़ा होते देख चिन्नाने लगने पर भिड़कतीं, क्योंकि उनका विचार था कि एक मनुष्य को दृढ़ होना चाहिए—कमज़ोर हृदय का नहीं। भाई साहब का दूसरा दोष, जो वह दूर करना चाहती थी, उनकी लापरवाही थी।

अपनी बुआआं से जो बात मुझे मालूम हुई और जिसे मैं भी समझता हूँ कि ठीक ही होगी वह यह है कि वह मेरे प्रति भी प्रेम रखती थीं। इस प्रेम ने धीरे-धीरे कोको (मेरे बड़े भाई निकोलस) का स्थान ले लिया, जो मेरे जन्मके बाद उनसे दूर हटते गये और पुरुषोंके हाथमें

सौंप दिये गये। उन्हें तो किसी एकको प्रेम करना ही था; इसलिए एक के स्थान में दूसरा आ गया।

माताजीका यही प्रेमपूर्ण चित्र मेरे हृदय-पटल पर अंकित है। वह मुझे इतनी विशुद्ध और महान् मालूम पड़ती थीं कि अपने जीवनके मध्यकाल में जब मैं चारों ओर प्रलोभनोंसे घिरा हुआ संघर्ष कर रहा था, मैंने अनेक बार उनकी आत्मासे अपनी सहायताकी प्रार्थना की और उस प्रार्थना ने मेरी बड़ी मदद की।

माताजीके पत्रों और उनके संबंधमें दूसरोंके मुंहसे सुनी हुई बातोंके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि हमारे पिताजीके परिवारमें उनका जीवन सुखी और आनंदमय था।

परिवार के लोगों में मेरी दादी थीं, मेरी बुआएँ थीं—काउंटेस अलेक्जेंड्रा इलीनिशाना ओस्टेन-सेकेन भी मेरी बुआ थीं और प्राशेनका को उन्होंने पाला था। एक दूरके रिश्तेकी, जिन्हें हम 'बुआ' पुकारते थे, टाट्रिआना अलेक्जेंड्रावना ऐरगोलस्की थी। वह मेरे दादाके घरमें पली थीं और जीवनभर मेरे पिताके घर रहीं। मेरे शिक्षक फेडोक इवानोविच रेसेल थे, जिनका ठीक-ठीक वर्णन मैंने बचपनमें किया है। इसके अलावा हम पांच बहन-भाई थे। निकोलस, सर्जी, मिट्रा, मैं और मेरी बहन मार्शका (मारया) जिसकी पैदाइशके वक्त माताजीकी मृत्यु हो गई थी। माताजी का ६ वर्षों का छोटा-सा वैवाहिक जीवन बहुत सुखी और संतोषपूर्ण था। परिवारके सभी लोगोंसे वह स्नेह करती थीं और स्वयं सबके स्नेहकी पात्री थीं। उनके पत्रोंसे मालूम होता है कि उस समय उनका जीवन समाजसे विज्ञग रहते हुये बीत रहा था। हमारे निकट परिचितों, ओगरेव परिवारवालों और उन संबंधियोंके सिवा, जो घूमते-घामते उधर आ निकलते थे और कोई यासनाया पोल्याना में नहीं आता था।

मेरी माताका समय अपने बच्चोंकी देख-रेखमें, घरका प्रबंध करनेमें, घूमनेमें, शामको मेरी दादीको उपन्यास सुनानेमें, रूसीकी

‘एमाइल’ जैसा गंभीर पुस्तकें पढ़नेमें, जो पढ़ा हो उस पर वाद-विवाद करनेमें, पियानो बजानेमें और मेरी एक बुआको इटालियन भाषा सिखानेमें जाता था ।

प्रायः सभी परिवारोंमें ऐसे समय आते हैं, जब कि सब लोग आनन्द-से रहते हैं और बीमारी या मृत्युसे पाला नहीं पड़ता । मैं समझता हूँ कि मेरी माताकी मृत्युतक हमारे परिवारमें भी ऐसा ही समय रहा । न तो किसीकी मृत्यु ही हुई न कोई सख्त बीमार ही पड़ा और मेरे पिताजीकी चिगड़ाई हुई आर्थिक अवस्था भी बहुत-कुछ सुधर गई । हर एक आदमी स्वस्थ, प्रसन्न और मित्र-भावसे रहता था । मेरे पिता हम सबका कहानियों और चुटकलासे मनोरंजन किया करते थे । परंतु जब मैंने होश संभाला वे अच्छे दिन बीत चुके थे, माताजीकी मृत्यु हो चुकी थी और उनके शोककी गहरी छाप हमारे परिवार पर लग चुकी थी ।

* * * *

मैंने ऊपर जो कुछ भी लिखा है वह सुनी-सुनाई बातों और चिट्ठी-पत्रियोंके आधार पर लिखा है । अब मैं यह लिखूंगा कि उस समयके मेरे अनुभव क्या हैं और मुझे क्या-क्या बातें याद हैं । मैं अपने बचपनकी वे बातें नहीं लिखूंगा, जिनकी केवल धुंधली-सी स्मृति है और मैं नहीं कह सकता कि उनमें क्या तो वास्तविक है और क्या काल्पनिक; बल्कि मैं उस जगहसे लिखना शुरू करूंगा, जहासे मुझे सब बातों, उन स्थानों और उन आदमियोंकी, जो बचपनसे ही मेरे आस-पास रहते आ रहे थे, साफ-साफ याद है । उन आदमियोंमें स्वभावतः पहला स्थान मेरे पिताका है । यह इसलिए नहीं कि उनकी मुझ पर*कुछ छाप पड़ी है, बल्कि इसलिए कि उनके प्रति मेरी आदर-भावना बहुत ज्यादा रही है ।

अपने बचपन ही में वह अपने पिताके इक्लौते लड़के रह गये थे । उनके छोटे भाई एलेंका रीढ़की हड्डी टूट जानेसे कुबड़े हो गये थे और चाल्यावस्थामें ही मर गये थे । सन् १८१२ * में मेरे पिताकी आया

* जब नेपोलियनने रूस पर हमला किया । अनु०

केवल १७ वर्षकी थी। माता-पिताके बहुत झिड़कने, मना करने, डराने और विरोध करने पर भी वे फ्रैन्समें भर्ती हो गये। उस समय मेरी दादीके (जो स्वयं गौशकोव कुलकी राजकुमारी थीं) एक निकट संबंधी राजकुमार एलेक्से इवानोविच गौशकोव युद्ध-मंत्री थे। उनके भाई ऐंड्रू इवानोविच युद्धके लिए भेजी गई सेनाके एक भागका संचालन कर रहे थे। मेरे पिता इन्हींके जेट (सहायक) नियुक्त हुए। उन्होंने १८१३-१४ और १८१४ के युद्धोंमें भाग लिया। उन्हें खरीते देकर फ्रांसमें किसी जगह भेजा गया। वहां वह कैंद कर लिये गये और तभी छूटे जब हमारी सेनाओंने पेरिसमें प्रवेश किया।

बीस वर्षकी आयुमें मेरे पिता अनजान बच्चे नहीं रह गये थे, क्योंकि १६ वर्षकी अवस्थामें, सेनामें भर्ती होनेसे पहले, उनने माता-पिताने उनका संबंध एक दास-कन्यासे करा दिया था। उस समय ऐसे संबंध युवकोंके स्वास्थ्यके लिए वाछनीय समझे जाते थे। उनसे उन्हें एक पुत्र मिशेंका हुआ जो कोचवान बनाया गया। जबतक मेरे पिता जीवित रहे, मिशेंकाकी हालत ठीक रही, परंतु बादमें उसने अपनेको चौपट कर लिया और जब हम भाई बड़े हो गये तब वह बहुधा हमारे पास भीख मांगने आया करता। मुझे अच्छी तरह याद है कि हम लोग उस समय विमूढ़ हो जाते थे, जब मेरा यह भाई, जो हमारे पितासे शकल-सूरतमें हम सब भाइयोंसे अधिक मिलता-जुलता था, अपनी हालत खराब हो जानेके फलस्वरूप हमसे १० या १५ रूबल, हम जो कुछ उसे दे सकते थे, प्राप्त कर बड़ी कृतज्ञता दिखाता।

युद्ध समाप्त होनेके बाद पिताजीने, फौजकी नौकरीसे उकता कर, जैसा कि उनके पत्रोंसे भूलकता है, वह नौकरी छोड़ दी और अपने कज्ञान लौट आये, जहां कि मेरे दादा गवर्नर थे। दादाकी हालत उस समय बिल्कुल खराब हो चुकी थी। कज्ञानमें मेरी बुआ पेलागेया इलीनिशा भी, जिनका विवाह युरकोवके साथ हुआ था, रहती थीं। थोड़े दिन बाद मेरे दादा मर गये और मेरे पिताके कंधों पर एक ऐसी जागीर का, जिस

पर उसके मूल्यसे कहीं अधिक कर्जा था, बूढ़ी दादीका, जो विलासी जीवन गितानेकी आदी थीं, तथा बुआका व एक और संबंधीका भार आ पड़ा। माताजीके साथ उनका विवाह भी उसी समय तय हुआ था। वह कज़ानसे यास्नाय पोल्याना आ गए, जहा ६ वर्ष बाद वह विधुर हो गये।

हां, तो मैं अपने पिताके जीवन-चित्र पर ही फिर आता हूं। वह मझोले कद व गठीले बदनके चुस्त आदमी थे। उनका चेहरा बड़ा प्रसन्न दिखाई पड़ता था, परंतु उनकी आंखें उदास रहतीं। उनका मुख्य धंधा खेती और मुकदमेबाज़ी, विशेषतः मुकदमेबाज़ी था। वैसे तो उस जमानेमें हर एकको ही मुकदमेबाज़ी करनी पड़ती थी, लेकिन मेरे दादाके भगड़ोंको सुलभानेके लिए पिताजीको खास तौरसे बहुत मुकदमे लड़ने पड़ते थे। इन मुकदमोंके कारण उन्हें अक्सर घर छोड़कर जाना पड़ता था। इसके अलावा वह बहुधा शिकार खेलनेके लिए भी बाहर जाया करते थे। शिकारके समय उनके साथियोंमें उनके मित्र एक मालदार और प्रौढ़ अविवाहित सज्जन किरिवस्की, ग्लेबोव और इस्तेनेव रहते थे। अन्य जागीरदारोंके समान मेरे पिताजीके घरके दासोंमें कुछ ऐसे थे जो उनके कृपापात्र थे। पेट्रुशका और मयूशा, दोनों भाई उनके विशेष कृपापात्र थे। वे दोनों सुंदर, कार्यपटु तथा होशियार शिकारी थे। मेरे पिताजी जब घर पर रहते थे तो खेतीका काम और बच्चोंको देखते-भालते तो थे ही, पढ़ते भी बहुत थे। उनका अपना पुस्तकालय था जिसमें फ्रांसका उच्चकोटिका साहित्य, ऐतिहासिक ग्रंथ, प्राकृतिक इतिहासकी पुस्तकें-बफन और क्यूवियरके ग्रंथ थे। मेरी बुआ कहा करती थीं कि मेरे पिताजीका यह नियम था कि वह पुरानी किताबें पढ़े बिना नई किताब नहीं खरीदते थे। यद्यपि उन्होंने बहुत-कुछ पढ़ा, तथापि यह मानना कठिन है कि उन्होंने 'क्रूसेडके इतिहास' और 'पोप' नामक ग्रंथ जो उन्होंने अपने पुस्तकालयके लिए प्राप्त कर रखे थे, सारे-के-सारे पढ़ लिये होंगे।

जहांतक मैं समझता हूं, उन्हें विज्ञानसे अधिक प्रेम नहीं था, परंतु

उनकी जानकारी अपने समयके साधारण आदमियोंके ज्ञानके बराबर थी। ऐलेक्जेंडर प्रथमके राज्यकालके शुरूके समय, तथा १८१३, १८१४ और १८१५ के युद्धकालके समयके बहुतसे आदमियोंके समान उन्हें भी उदार दलका तो नहीं कहा जा सकता, परंतु आत्मसम्मानकी भावनाके कारण ही उनके लिए ऐलेक्जेंडरके प्रतिक्रियावादी राज्यकालमें या निकोलसके अधीन काम करना संभव नहीं हो सका था। वह अकेले ही नहीं, बल्कि उनके सभी मित्र इसी प्रकार सरकारी नौकरियोंसे अलग रहे थे और निकोलस प्रथमके राज्यकालमें एक तरहसे विद्रोही थे।

मेरे बाल्यकाल और शौचनकाल तक हमारे परिवारका न तो किसी सरकारी अफसरसे परिचय था, न किसी प्रकारका निकट संपर्क ही था। अपने बचपनमें तो मैं इनका महत्त्व न समझ सका। उस समय तो मैं इतना ही जानता था कि पिताजीने कभी किसीके सामने सिर नहीं झुकाया, उनकी वाणी मधुर, नम्र और बहुधा व्यंग और कटाक्षभरी होती थी। उनमें आत्म-गौरवकी यह भावना देखकर ही मेरा उनके प्रति प्रेम बढ़ गया और उन्हें देखकर मुझे अधिक प्रसन्नता होने लगी।

उनके पढ़ने-लिखनेके कमरेमें, मुझे खूब याद है, हम लोग रातको सोते समय उन्हें प्रणाम करने अथवा कभी-कभी सिर्फ खेलने जाते थे। वह कमरेमें चमड़ेके सोफे पर बैठे हुए तमाखू पीते होते थे। हमारे जाने पर वह हमारी पीठ टोकते और कभी-कभी जब वह थके होते या दरवाजे पर खड़े अपने क्लर्कसे या हमारे धर्म-गुरु याज़ीकोव से (जो अधिकतर हमारे यहां रहते थे) बातचीत करते, तो हमें अपने सोफेकी पीठ पर चढ़ लेने देते। उस समय हमें बड़ा आनंद आता था। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार वह नीचे आते और हमें तसवीरें बनाकर देते जो हमें सर्वोत्तम मालूम होती थीं। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार एक बार उन्होंने मुझसे पुरिकनकी कविताएं पढ़वा कर सुनीं जो मुझे बहुत अच्छी लगी थीं और मैंने उन्हें कंठस्थ कर लिया था। वे कविताएं 'समुद्र की ओर' 'ओ मुक्त तत्व, जाओ-जाओ!' और 'नेपोलियन से' आदि-

आदि थीं। मैं जिस हृदयस्पर्शी और मार्मिक ढंगमें इन कविताओंको पढ़ा करता था, वह उन्हें बहुत ही अच्छा लगता था। मुझसे ये कविताएं सुननेके बाद वह याज्ञीकोवकी और, जो वहां बैठे थे, मर्मभरी दृष्टिसे देखने लगे। मैं समझ गया कि ये मेरे कविता पढ़नेके ढंगको अच्छा समझते हैं, अतः मैं इस पर बड़ा खुश हुआ था।

मुझे याद है कि दोपहरके व रातके भोजनके समय वह बहुतसी व्यंग और विनोद-भरी बातें और कहानियां सुनाते थे और हमारी दादी, हमारी बुआएं और सब बच्चे उन्हें सुनकर बहुत हंसते थे। मुझे उनकी नगरकी यात्राएं याद हैं। जब वह अपना फ्रॉक-कोट और तंग मोहड़ीका पाजामा पहनते तो बहुत सुंदर लगते थे। मुझे सबमें अधिक याद उनके शिकारकी व कुत्तोंकी है। शिकारके लिए उनका जाना मुझे खूब याद है। उनके साथ घूमने जाना और उनके शिकारी कुत्तोंका उस लंबी-लंबी घास-से जा कभी उनके पेटमें चुभ जाती और कभी बदन पर लगती, उत्तेजित हो उठना और पंख खड़ी करके चारों ओर भागना और मेरे पिताजीका तारीफ करना, ये सब बातें भी मुझे याद हैं। मुझे याद है कि किस प्रकार पहली मितंबरका, शिकारकी छुट्टीके दिन, हम सब गाड़ीमें बैठकर एक जंगलमें गये जहां एक लोमड़ी लाई गई थी, किस प्रकार शिकारी कुत्तोंने उसका पीछा किया और किस प्रकार उन्होंने उसे किसी स्थान पर, जहां हम उन्हें देख नहीं सके, पकड़ लिया। मुझे एक भेड़िया अपने घरके पास लाये जाने और हम सब बच्चोंके नंगे पैर उसे देखने जानेका भी अच्छी तरह याद है। वह भूरे रंगका विशाल भेड़िया एक गाड़ीमें पैर बांधकर, बंद करके लाया गया था। वह गाड़ीमें चुपचाप लेटा था, लेकिन जो भी कोई उसके पास जाता उसकी ओर वह तरेर कर देखता था। बागके पीछे एक जगह भेड़िया गाड़ीसे उतारा गया। कुछ लोगोंने बड़ी-बड़ी लकड़ियोंकी कमानी (टिकटी) से उसे जमीनपर दबाये रक्खा और अन्य लोगोंने उसके पैरकी रस्सी खोलनी शुरू की। वह रस्सी से झगड़ने, उसे भंभोरने और दातोंसे काटने लगा। आखिर लोगोंने पीछेसे रस्सी खोल दी और

उनमेंसे एक चिल्लाया—‘उसे छोड़ दो।’ कमानियां उठा दी गईं और भेड़ियाभी उठ बैठा। वह लगभग दस सैकंडतक चुपचाप खड़ा रहा, परंतु लोग चिल्लाने लगे और शिकारी कुत्तोंको भी खोल दिया गया। बस फिर क्या था, भेड़िया, कुत्ते, घुड़सवार, शिकारी सब सामनेका मैदान पार करके पहाड़के नीचे तराईकी ओर दौड़ पड़े। भेड़िया भाग गया। मुझे याद है कि इसपर पिताजी घर आकर नाराज़ हुए थे।

पिताजी मुझे उस समय सबसे अच्छे लगते थे जब वह सोफे पर दादीके साथ बैठे होते थे और पेशंस* खेलके लिए ताशके पत्ते फैलानेमें उनकी सहायता करते थे। वह हर एक आदमीके प्रति नम्र और मृदु-भाषी थे; लेकिन मेरी दादीके प्रति तो खास तौरसे विनम्र थे। मेरी दादी अपनी लंबी ठोड़ी झुकाये और सिर पर एक झालदार टेढ़ी टोपी लगाये, सोफे पर बैठती रहतीं और ताशके पत्ते खोल-खोलकर सामने रखती जाती थीं। बीच-बीचमें वह अपनी सोनेकी मूंघनीसे चुटकी भर-भरकर सूंघती जाती थीं।

पिताजीकी दादीके साथ सोफे पर बैठकर उन्हें पेशंस खेलनेमें मदद देनेकी स्मृति सबसे मधुर है। एक बार, मुझे याद है, पेशंस खेलके दर्मियान, जब कि मेरी बुआ जोर-जोरसे पढ़ रही थीं, उनमेंसे एकने बीचमें रोका और एक आइनेकी तरफ इशारा किया और धीरेसे कुछ कहा। हम सब उधर देखने लगे। बात यह थी कि एक नौकर टीखोन यह समझकर कि मेरे पिता दीवानखानेमें होंगे, पढ़नेके कमरेमें रक्खे हुए तमाखूके बड़े थैलेमेंसे तमाखू चुराने जा रहा था। पिताजीने आइनेमें देखा कि वह पंजेके बल चुपके-चुपके जा रहा था। बुआएं हंसने लगीं, दादी बड़ी देरतक न समझ सकीं, पर जब समझ गईं तो वे भी मुस्करा दीं। मैं अपने पितासे बहुत मुहब्बत रखता था, लेकिन वह मुहब्बत कितनी गहरी थी, यह तभी मालूम हुआ, जब वह मर गये।

सोफेके पास एक आराम कुर्सी पर खुदाईके कामकी बंदूक बनानेवाली

* पेशंस ताशका एक खेल है जिसे एक आदमी अकेला ही खेलता है।

पेट्रोव्ना कारतूसोंका पट्टा और एक तंग और छोटी-सी जाकट पहने बैठी रहती। अक्सर वह कातती रहती और रीलको दीवार पर दे मारती, जिसकी चोटसे दीवारपर निशान पड़ गये थे। यह पेट्रोव्ना एक व्यापारी स्त्री थी जिसे मेरी दादी बहुत चाहती थीं। वह अक्सर हम लोगोंके यहां रहती थी और दादीके सोफ़ेके पास ही बैठा करती थी। मेरी बुआएं आराम-कुर्सी पर बैठी रहतीं और उनमेंसे एक ज़ोर-ज़ोरसे पढ़ती रहती थी। एक आराम-कुर्सी पर पिताजीकी प्यारी कुत्ती मिल्काने अपनी जगह बना रखी थी, उसकी काली-काली सुंदर आंखें थीं और चितकवरा रंग था। हम लोग प्रणाम करनेके लिये रातमें उस कमरेमें जाते थे और कुछ देरके लिए वहां ठहर जाते थे।

* * * *

बचपनमें टत्रमें नहाने और कपड़ेमें बांधकर* डाल दिये जानेके ये मेरे संस्मरण सबसे पहलेके हैं। मैं उन्हें एक क्रमसे तो नहीं लिख सकता, क्योंकि मुझे मालूम नहीं कि उनमें कौन-सा पहला और कौन-सा दूसरा है। उनमेंसे कुछके विषयमें तो मुझे यह भी नहीं मालूम कि वे बातें स्वप्नमें हुईं या जाग्रत अवस्थामें। मैं लिपटा-लिपटाया पड़ा रहता; अपने हाथ फैलानेका प्रयत्न करता, परंतु फैला नहीं सकता था। मैं रोता और चिल्लाता। यह रोना-चिल्लाना मुझे स्वयं अरुद्धा नहीं लगता था, परंतु मैं चुप भी नहीं रह सकता था। उस समय कोई—मुझे याद नहीं कौन—आता और मेरे ऊपर झुकता ॥ यह सब बातें कुछ-कुछ अंधेरेमें होती थीं। मुझे मालूम था कि वह दो ही आदमी हैं। मेरे रोने-चिल्लानेसे वे भी विचलित होते, परंतु जैसा कि मैं चाहता था, मुझे खोलते नहीं थे। अतः मैं ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाता। वे तो यह समझते थे कि इस प्रकार मुझे बांधे रखना आवश्यक है; परंतु मैं इसे बिल्कुल अनावश्यक समझता था और यही बात उन्हें सिद्ध करके दिखाना चाहता था। अतः मैं ज़ोर-ज़ोर-

* रूसमें यह प्रथा थी कि छोटे-छोटे बालकोंको कपड़ेमें इस प्रकार लपेट देते थे कि वह हिल-डुल न सकें और हाथ पैर न चला सकें।

से रोने और चिल्लाने लगता था । यह चिल्लाहट स्वयं मुझे अप्रिय थी, परंतु मैं इसे रोक नहीं सकता था । मैं इस अन्याय और अत्याचारका—मनुष्योंका नहीं; क्योंकि वे तो मुझ पर तरस खाते थे; वरन भाग्यका अनुभव करता और अपने ऊपर रोता था । लेकिन यह सब क्या था, इसके संबंधमें न तो मैं जानता हूँ और न कभी भविष्यमें जाननेकी संभावना ही है कि आया उस समय मुझे बांधकर डाला जाता था जब कि दूध पीता बच्चा ही था (और मैं अपने हाथ छुड़ानेके लिए प्रयत्न करता रहता था) अथवा लोग मुझे उस समय भी बांधकर डाल देते थे जब कि मैं एक सालका हो गया था ताकि मैं कोई फोड़ा फुंसी न खुरच डालूँ; अथवा यह एक ही अनुभूति है और इस एक ही अनुभूतिमें अन्य बहुतसे अनुभव भी आ मिले हैं; जैसा कि अधिकतर स्वप्नावस्थामें होता है । लेकिन हां, यह तो निश्चित है कि यह मेरे जीवनकी सबसे पहली और सबसे अच्छी स्मृति है । मेरे हृदय पर इसकी जो छाप है, वह रोने-चिल्लानेकी स्मृतिमात्र ही नहीं है, अपितु उन अनुभूतियोंके पेचीदेपन और पारस्परिक विरोधिताकी छाप है । मैं स्वतंत्रता चाहता हूँ, इससे किसीको नुकसान न पहुंचेगा; परंतु सारी बात तो यह है कि मैं, जिसे शक्ति प्राप्त करनेकी आवश्यकता है, कमज़ोर हूँ, जब कि वे बलवान हैं ।

दूसरी स्मृति भी बड़ी सुखद है । मैं एक टबमें बैठा हुआ हूँ । मेरे चारों ओर किसी चीज़की, जिससे वे मेरा छोटा-सा शरीर रगड़ रहे हैं, एक तरहकी गंध फैल रही है जो अप्रिय नहीं है । मेरे विचारसे वह चोकर है, जो मुझे नहलानेके टबमें डाल दी गई है । उस चोकरकी गंध व स्पर्शसे जो सुंदर व अभूतपूर्व संवेदना उठी, उसने मुझे जाग्रत कर दिया और पहली बार ही मुझे अपने शरीरका, जिसकी ल्याती पर पतली-पतली हड्डियां साफ दिखाई दे रही थीं, चिकनी लकड़ीके गहरे रंगके टबका, धाय मांके खुले हाथोंका, भाप उठते हुए और चक्कर खाते हुए गरम पानीका, छपछपानेकी आवाज़का, टबके गीले किनारों पर हाथ फेरने पर उसकी चिकनाईका भान और बोध हुआ और ये सब चीज़ें मुझे अच्छी लगने लगीं ।

यह सोचकर आश्चर्य और भय मालूम होता है कि जन्मसे लेकर तीन सालकी आयु तक, जब मैं स्तनपान करा कर रखा जाता था, और जब मेरा स्तनपान करना छुड़ाया गया और जब पहले-पहल घुटनोंके बल चलना, फिर खड़े होकर चलना और कुछ बोलना सीखा था, मुझे उन दो बातों, अर्थात् नहाने और कपड़ेमें बंधे पड़े रहनेके अतिरिक्त बहुत दिमाग खरोचने पर भी कोई घटना याद नहीं आती । आखिर मैं इस संसार में कब आया ? मेरा जीवन कब आरंभ हुआ ? उस समय मैं जिस अवस्थामें था, उसकी कल्पना इतनी सुखद क्यों है ? क्यों यह सोचकर कि मृत्युके समय भी ऐसी ही अवस्था हो जायगी जब जीवनकी किसी घटनाको स्मृति नहीं रहेगी, जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सके, हृदय थर्रा उठता है—एक समय यह सोच कर मेरा भी हृदय थरा उठता था और अब भी बहुत-से लोगोंका थर्रा उठता है ? क्या मैं उस समय जीवित नहीं था जब कि मैं देखना, सुनना, समझना, बोलना, स्तनपान करना, हँसना और अपनी माताको प्रसन्न करना सीख रहा था ? अवश्य मैं जीवित था और आनंदसे रह रहा था । क्या उस समय मेरे पास वे सब चीज़ें नहीं थीं जिनसे मैं अब जीवित रह रहा हूँ ? क्या मैंने उसी समय इतना कुछ, इतनी शीघ्रतासे प्राप्त नहीं कर लिया कि उसका सौवां भाग भी बादके सारे जीवनमें फिर प्राप्त नहीं हुआ ? पांच सालके बालकसे इस आयु तक मानों मैं एक कदम चला हूँ, जन्मके समयसे पांच सालकी आयुतक बड़ा लंबा रास्ता था, गर्भमें आनेके समयसे जन्म होनेके बीच एक लंबी खाई थी, परंतु गर्भमें आनेकी पूर्व-स्थितिसे गर्भमें आने तकका समय एक लंबी खाई नहीं वरन अग्रग्य और अचिंत्य है । तीन तत्त्व आकाश, काल, कारण व कार्य हमारी कल्पनाके ही मूर्त्त-रूप हैं । हमारे जीवनका सार इन कल्पनाओंसे परे ही नहीं है अपितु हमारा सारा जीवन इन कल्पनाओंका अधिकाधिक दास होते जाना और फिर उनसे मुक्त होना ही है ।

टबके बाद जो तीसरा अनुभव आता है वह ईरीमीवनाका है। 'ईरीमीवना' वह हौवा था जिससे लोग हम बच्चोंको डराया करते थे। शायद वे बहुत समयसे इस तरह हमें डराते रहे होंगे, परंतु मुझे जो इसकी याद है, वह यों है : मैं अपने विस्तरे पर पड़ा हूँ और रोज़की तरह प्रसन्न हूँ। इसी समय मुझे पालने-पोसनेवालोंमेंसे कोई आता और एक नई-सी आवाज बनाकर मेरे सामने कुछ कहकर चला जाता। मैं प्रसन्न होनेके साथ-साथ डर भी जाता। मेरे साथ मेरे कमरेमें मेरे-जैसा ही कोई और भी होता। संभवतः वह मेरी बहन मारया थी। उसका पालना भी मेरे ही कमरेमें था। मुझे याद है कि मेरे पालनेके पास एक परदा भी पड़ा हुआ था। मैं और मेरी बहन दोनों इस अद्भुत घटना पर जो कि घटनेवाली है, प्रसन्न भी होते और डरते भी। मैं तकियेमें छिप जाता और उसके नीचेसे दरवाज़ेकी ओर देखता। दरवाज़ोंमेंसे मैं कोई अद्भुत और प्रसन्नता देनेवाली वस्तुके आनेकी आशा रखता था। उसी वक्त कोई ऐसे कपड़े और टोपी पहने हुए आता जिसे पहले मैंने कभी न देखा था। मैं इतना तो अवश्य जान जाता कि यह व्यक्ति हमारा परिचित है (वह हमारी बुआ थी या धाय, यह मुझे याद नहीं) और वह किन्हीं बुरे बच्चों और ईरीमीवनाके विषयमें कर्कश स्वरमें न जाने क्या कहता था। मैं सचमुच डर जाता और डरसे और प्रसन्नतासे किलकारियां मारता, परंतु फिर भी उस डरमें मुझे आनंद आता और मैं यह नहीं चाहता था कि मुझे डरानेवाला व्यक्ति यह समझ जाय कि मैंने उसे पहचान लिया है।

इसी ईरीमीवनासे मिलता-जुलता एक और अनुभव है और चूँकि वह इस अनुभव से अधिक स्पष्ट है, अतः मैं समझता हूँ कि वह काफी चाटका है। इसका आशय मैं आजतक नहीं समझ सका हूँ। इस घटनामें हमारे जर्मन शिक्षक थियोडोर इवानिचका प्रमुख भाग है। किंतु चूँकि उस समयतक मैं उनको नहीं सौंपा गया था, इसलिए मैं समझता हूँ कि यह घटना मेरी ५ सालकी आयुके पहलेकी होगी। अपनी यादमें

थियोडोर इवानिचके संपर्कमें आनेका यह मेरा पहला अवसर था और यह घटना भी इतने पहले हुई कि इसमें थियोडोरके अतिरिक्त अपने भाइयों या पिताकी ज़रा भी याद नहीं। यदि इस संबंधमें मुझे किसीका ज़रा भी खयाल है तो वह मेरी बहनका है और वह भी इसलिये कि वह मेरी ही तरह ईरीमीवनासे डरती थी। इस घटनाके साथ-साथ मुझे एक बात और याद है और वह यह कि हमारे मकानमें एक ऊपरकी मंजिल और थी। मैं उस मंजिलमें कैसे पहुंचा, अपने-आप गया अथवा कोई दूसरा आदमी मुझे ले-गया, यह तो मुझे याद नहीं, लेकिन यह मुझे अवश्य याद है कि हममेंसे बहुतोंने वहां पहुंचकर एक-दूसरेका हाथ पकड़ कर घेरा डाल लिया। हमारे साथ कुछ स्त्रियां भी थीं, जिन्हें मैं नहीं जानता। परंतु, हां, किसी भी प्रकार मुझे यह मालूम हो गया कि वे धोविनें थीं। हम सब गोल चक्करमें घूमते और कूटते। थियोडोर ईवानिच बहुत ऊंचे-ऊंचे पैर उठाता और बड़ी आवाज़से ज़मीन पर पटकता। मैंने उसी समय यह महसूस किया कि यह बात गलत और खेलको बिगाड़ने वाली है। मैं उसे देखता और (शायद) चिल्लाने लगता। बस उसी वक्त सारा खेल खत्म हो जाता।

बस पांच सालतक मुझे इतना ही याद है। इसके अलावा मुझे अपनी धायों, बुआओं, बहनों, भाइयों, यहांतक कि पिताजी व अपने कमरों और अपने खिलौनोंतक की भी याद नहीं। अपने बाल्य-जीवनकी घटनाओंकी अधिक स्पष्ट स्मृति तो उस समयसे आरंभ होती है, जब कि मैं नीचेकी मंजिलमें थियोडोर इवानिच तथा बड़े-बड़े लड़कोंके पास पुरुष-गृहमें आ गया।

जब कि मैं नीचे थियोडोर इवानिच और बड़े लड़कोंके पास आ गया, उसी समय जीवनमें पहली बार और इसलिए अधिक तीव्रतासे मुझे उस भावनाका और उन धार्मिक आचरणोंका अनुभव हुआ, जिसे कर्त्तव्यकी भावना कहते हैं और जिनका पालन हर एकको करना पड़ता है। जन्मसे ही जिन चीज़ों और जिन आदतोंका मैं आदी हो गया था, उन्हें छोड़ना

कठिन था। मैं स्वभावतः ही उदास रहने लगा। इसलिए नहीं कि मैं अपनी धायसे, बहनसे, और बुआसे अलग हो गया बल्कि यह उदासी इसलिए थी कि मैं अपने पालने, अपने परदे और अपने तकियेसे बिलुडू गया था। यही नहीं, मैं अपने उस नये जीवनसे, जिसमें कि मैं प्रवेश कर रहा था, कुछ डरने-सा लगा। मैं उस भावी जीवनके अच्छे अंशको ही देखने और थियोडोरके लाइ और दुलार-भरे शब्दोंमें विश्वास करनेकी कोशिश करता था। मैंने उस अपमान और घृणाके भावकी ओरसे आंखें मूंद लीं जो मुझ सबसे छोटे लड़केके प्रति दूसरे लड़के दिखाते थे। मैं इस बातको अपने मनमें बिठानेकी कोशिश करने लगा कि एक बड़े लड़केका लड़कियोंके साथ रहना शर्मकी बात है और यह भी कि धाय आदिके साथ ऊपरकी मंजिलमें (अर्थात् रनवासमें) जीवन व्यतीत करना अच्छा नहीं है। परंतु फिर भी मेरा मन सदैव उदास रहता था और मैं जानता था कि मेरा भोलापन और आनंद इस बुरी तरह नष्ट हूं रहा है और अब वह फिर कभी प्राप्त न होगा। बस, आत्माभिमान और आत्म-गौरव तथा कर्त्तव्य-पालनकी भावना ही ऐसी थी जिसने मुझे रोक रक्खा। इसी तरह भावी जीवनमें कोई नया काम आरंभ करते समय किसी दुविधामें या धर्म-संकटमें पड़ जाने पर मैं इन्हीं दो भावनाओंसे किसी निश्चय पर पहुंचता था। मुझे उस हानि पर, जिसकी मैं पूर्ति नहीं कर सकता था, बड़ा दुःख होता था। यद्यपि मुझसे यह कहा गया था कि अब मुझे लड़कोंके साथ रक्खा जाना चाहिये; परंतु इस पर भी मैं तो यह कभी विश्वास ही नहीं कर सका कि ऐसा कभी होगा। जो गाउन मुझे पहनाया जाता था उसमें एक पेट्टी भी कमरमें बांधनेके लिए थी और मुझे ऐसा मालूम होता था मानो इस पेट्टीमें सदाके लिए ऊपरकी मंजिल—(जहां स्त्रियां रहती हैं अथवा यदि राजसी-भाषामें कहें तो रनवास) से मेरा संबंध तोड़ दिया है। उस वक्त जिन सब व्यक्तियोंके साथ मैं रह चुका था, उनका खयाल तो मुझे आया नहीं, मगर वहांकी एक मुख्य स्त्रीका जिसके बारेमें इसके पहलेकी कोई बात मुझे याद नहीं है, खयाल आया। वह महिला थी

टाशियाना एलेक्ज़ेंड्रोवना एगोल्स्की । मुझे उनका ठिगना व सुगठित शरीर, काले-काले केश, दयालु और नम्र स्वभाव अब भी याद है । उन्होंने ही वह गाउन मुझे पहनाया था और मुझे छातीसे लगाकर चूमते हुए उन्होंने ही मेरी कमरमें पेटी बांधी थी । उस समय मैंने देखा कि वह भी मेरे जैसा ही अनुभव कर रही थीं कि यह अबसर दुःख और बड़े दुःख का अबसर है । परंतु यह तो होता ही है । उसी समय जीवनमें पहली बार मैंने जाना कि जीवन कोई खेल नहीं वरन् गंभीर वस्तु है ।

— * * * * *

माता-पिताके बाद मेरे जीवन पर जिनका बहुत प्रभाव पड़ा, वह टाशियाना एलेक्ज़ेंड्रोवना एगोल्स्की थीं, जिन्हें हम बुआ कहा करते थे । वह मेरी दादीके पीहरके नातेसे कोई बहुत दूरकी रिश्तेदार थीं । अपने माता-पिताकी मृत्युके बाद वह और उनकी बहन लीसा अनाथ हो गईं । लीसाने बादमें पीटर ईवानोविच टाल्स्टायसे विवाह कर लिया था । उनके कुछ भाई थे जिनके पालन-पोषणका प्रबंध उनके सत्रधियोंने किसी प्रकार कर दिया था । दोनों लड़कियोंकी शिक्षा-दीक्षाका भार चर्न ज़िलेमें अपने क्षेत्रोंमें प्रसिद्ध, अभिमानी और प्रमुख महिला टाशियाना सीमानोवना स्कूरेटोव और मेरी दादीने ले लिया । उन्होंने पत्रियों पर लड़कियोंके नाम लिखकर उन्हें मोड़कर देव-मूर्तिके सामने डाल दिया और उसकी प्रार्थना कर लाटरी उठाई । लीसा टाशियाना सीमानोवनाके हिस्सेमें आई और यह मेरी दादीके । हमारे घर में वे तेनिष्का पुकारी जाती थीं ; दोनोंका जन्म १७६५ ई०में हुआ था । उनकी आयु मेरे पिताके बराबर थी । उन्हें मेरी बुआओंके बराबर ही शिक्षा दी गई थी और घरमें सब लोग उन्हें प्यार करते थे । कोई उनसे नाराज़ तो हो ही नहीं संकता था; क्योंकि वह दृढ़, उत्साही और आत्म-त्याग करनेवाली, चरित्रवान महिला थीं । उनके चरित्रकी दृढ़ता एक घटनासे साफ़ झलकती है जो वह हमें अपने हाथमें हथेलीके बराबर जले स्थानका दाग दिखाकर सुनाया करती थीं । वे सब बच्चे म्यूकियस

स्केवोला की कहानी पढ़ रहे थे । उन्होंने आपसमें कहा कि जैसा उसने किया वैसा कोई नहीं कर सकता । तेनिस्काने कहा, 'मैं वैसा कर दिखाऊंगी ।' मेरे धर्म-पिता याजीकोवने कहा, 'तुम नहीं कर सकती ।' और उन्होंने तुरंत एक रूल मोमबत्तीमें गरम किया और जब वह पिघलने लगा और उसमें से धुआ निकलने लगा तो उन्होंने कहा, 'लो, अब इसे अपने हाथ पर लगाओ ।' तेनिस्काने अपना खुला हाथ बढ़ा दिया (उस समय लड़कियां आधी बांहोंका कपड़ा ही पहनती थीं) और याजीकोवने वह जलता हुआ रूल उनके हाथ पर दबा दिया । वह खींची तो, परंतु उन्होंने अपना हाथ पीछे न हटाया; और उस समय तक उफ़ न किया जबतक याजीकोवने वह रूल हटा नहीं लिया । इस रूलके साथ ही उनके हाथकी चमड़ी भी उधड़ गई । जब घरके बड़े आदमियोंने पूछा कि यह कैसे जल गया तो उन्होंने कहा कि यह मैंने अपने हाथसे जला लिया है, क्योंकि मैं भी यह देखना चाहती थी कि म्यूकियस स्केवोलाको उस समय कैसा अनुभव हुआ होगा ।

सभी बातोंमें यह ऐसी ही थीं । उनमें दृढ़ता थी, साथ ही आत्मत्याग था । घने, काले और घुंघराले बालोंकी गुथी हुई लटों, काली-काली आंखों तथा प्रफुल्ल मुल-मंडल सहित वह बड़ी सुंदर और आकर्षक मालूम पड़ती रही होंगी ।

मुझे उनकी जबकी याद है, वह ४०से ऊपर थीं और मेरे मनमें कभी यह विचार भी नहीं उठा था कि वह सुंदर हैं या नहीं । मैं उन्हें प्यार करता था, उनकी आंखोंको, उनकी मुस्कराहटको, उनके छोटे-छोटे हाथोंको प्यार करता था ।

संभवतः वह मेरे पिताको प्यार करती थीं और मेरे पिता भी उनसे प्रेम करते थे, परंतु उन्होंने युवावस्थामें उनसे विवाह नहीं किया । उन्होंने सोचा कि मेरी धनी मातासे विवाह करनेमें उन्हें लाभ होगा । बादमें (अर्थात् मेरी माताकी मृत्युके बाद) उन्होंने इसलिए उनसे विवाह नहीं किया कि वह अपने और पिताजीके तथा हमारे बीच जो

काव्यमय संबंध था, उसे त्रिगाङ्गना नहीं चाहती थीं । एक सुंदर वस्तेमें बंधे उनके कागज़ोंमें सन् १८३६की यानी मेरी माताकी मृत्युके ६ साल बादकी लिखी हुई निम्न पंक्तिया मिली हैं:—

“१६ अगस्त १८३६ । निकोलसने मेरे सामने आज एक विचित्र प्रस्ताव रक्खा, वह यह कि मैं उससे विवाह कर लूँ और उसके बच्चोंकी माता बन जाऊँ तथा उन्हें कभी न छोड़ूँ । मैंने पहला प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, लेकिन दूसरेको जीवन रहते निवाहने का वायदा किया है ।”

— इस प्रकार उन्होंने लिखा था लेकिन उन्होंने इस बातका हमसे या किसी औरसे भी कभी जिक्र नहीं किया । पिताजीकी मृत्युके बाद उन्होंने उनकी दूसरी बात पूरी की । हमारी दो बुआएँ और एक दादी थीं, जिनका हमारे ऊपर टाशियाना ऐलेक्ज़ेंड्रोव्नासे अधिक अधिकार था । टाशियाना ऐलेक्ज़ेंड्रोव्नाको बुआ कहनेकी हमारी आदत पड़ गई थी अन्यथा रिश्तेमें तो वह हमसे इतनी दूर थीं कि मैं उस संबंधकी याद भी नहीं कर सकता । परंतु अपने प्रेमके कारण ही (घायल हंसकी कथामें बुढ़के समान) हमारे पालन-पोषणमें उनका सबसे अधिक हाथ रहा और हम इसे अनुभव करते थे ।

मैं तो उनके प्रेममें उन्मत्त हो जाया करता था । मुझे याद है कि किस प्रकार एक बार जब मैं पांच वर्षका था, ड्राइंग रूममें सोफेके पीछेसे हाथ डालकर उनसे लिपट गया और किस प्रकार दुलार और प्यारसे उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया । मैंने भी उनका हाथ पकड़ लिया और उसे चूमने लगा और प्रेमान्मत्त होकर किलकारियां मारने लगा ।

एक अमीर घरानेकी लड़कीके समान ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी । वह रूसी भाषासे फ्रांसीसी भाषा अच्छी लिख और बोल सकती थीं । पियानो भी बहुत सुंदर बजाती थीं, परंतु लगभग ३० सालसे उन्होंने उसे छुआ तक नहीं था । जब मैं बड़ा हो गया और मैं भी पियानो बजाना सीखने लगा तो उन्होंने भी उसे बजाना शुरू किया । कभी-कभी जब हम दोनों मिलकर गाते तो वह अपने मधुर स्वरके ठीक उतार-चढ़ाव और ताल-स्वर मिले हुए गानेसे मुझे चकित कर देतीं ।

अपने नौकरोंके प्रति वह बड़ी दयालु थीं। उनसे कभी नाराज़ होकर नहीं बोलती थीं। उनको मारने और पीटनेका तो विचार भी उन्हें सख्त नहीं था। फिर भी इतना मानती थीं कि दास तो अखिर दास ही है और उनके साथ मालकिन जैसा बर्ताव करती थीं। फिर भी वे लोग उन्हें औरों से भिन्न मानते थे और सब उन्हें प्यार करते थे। जब उनकी मृत्यु हुई और वह अंत्येष्टि-क्रियाके लिए गांवमें होकर ले जायी जा रही थीं, उस समय सारे-के-सारे किसान अपने घरोंसे निकल आये और उनके लिए प्रार्थना करवाई।* उनका एक विशेष गुण उनका प्रेम था, लेकिन वह प्रेम मैं चाहता था कि ऐसा न होता तो अच्छा था, केवल एक ही आदमी अर्थात् पिताजीके प्रति था। उसी केंद्रसे फल कर उनका प्रेम सबको मिलता था। हम यह अनुभव करते थे कि वह हमें हमारे पिताजीके कारण ही प्रेम करती हैं। वह उनके द्वारा ही किसी और को प्रेम करती थीं, क्योंकि उनका सारा जीवन प्रेममय था।

यद्यपि हमारे प्रति अपने प्रेमके कारण उनका हमारे ऊपर अधिक अधिकार था, लेकिन फिर भी हमारी बुआओंका हमारे ऊपर उनसे अधिक कानूनी अधिकार था और जब पेलागोया इलीनिच्ना हमें कज़ान ले जाने लगी, तो वह उनका अधिकार मान गईं। लेकिन इससे हमारे प्रति उनके प्रेममें तिलमात्र भी अंतर नहीं आया। यद्यपि वह अपनी बहिन काउटेस ई० ए० टॉल्स्टॉयके साथ रहती थीं, लेकिन वास्तवमें उनका मन हमारे यहां रहता था। और यथासंभव जल्दी-से जल्दी हमारे यहां लौट आती थीं। वह अपने जीवनके अंतिम २० दिनोंमें हमारे साथ यास्नया पालयाना में रहीं और यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नताकी बात थी। लेकिन हम अपनी प्रसन्नता का मूल्य आंकनेमें असमर्थ रहे थे; क्योंकि सच्ची प्रसन्नता तो

*उस समय मृत व्यक्तिकी आत्माकी शांतिके लिये पादरियोंको थोड़ी-सी दक्षिणा देकर प्रार्थना करानेकी प्रथा तो थी, परंतु किसानों द्वारा किसी महिलाके लिए, जो उनके गांवकी मालकिन भी न हो, ऐसी प्रार्थनाएं कराना असाधारण बात थी।

मौन और अलङ्घित होती है। मैं उसकी कदर अवश्य करता था, लेकिन वह पर्याप्त नहीं थी। उन्हें अपने कमरेमें मर्तबानोंमें मिटाई, अंजीर, सोंठ पड़ी हुई मोटी रोटी और खजूर रखनेका शौक था, और वह विशेष रूपसे मुझे ये चीजें दिखलाया करती थीं। मुझे यह बात कभी नहीं भूलती और स्मरण आने पर हृदयमें पश्चात्तापकी एक तीखी चुभन होती है कि इन चीजोंके लिए उनके रूपया मागने पर मैंने हर बार इंकार ही कर दिया और वह सदा टट्टी सांभ लीचकर चुप हो गई। यह सच है कि मुझे स्वयं रूपयोंकी ज़रूरत थी लेकिन अब तो मुझे जब कभी भी स्मरण होता है कि मैंने उन्हें रूपया देनेसे इंकार किया तो उस समय मैं सिहर उठता हूँ।

तबकी बात है, जब मेरा विवाह हो चुका था और वह भी कमज़ोर हो चली थीं। एक दिन हम सब उनके कमरेमें जमा थे। मौका देखकर, पीछेको मुँह फेरकर (मैंने उस समय दवा कि वह गाने ही वाली हैं) उन्होंने कहा—‘देखो मेरे प्यारे बच्चे, मेरा कमरा अच्छा है और शायद तुम्हें इसकी ज़रूरत पड़े।’ और उनकी आवाज कापने लगी—‘अगर मेरी इसी कमरेमें मृत्यु हुई तो मेरी स्मृति तुम्हें दुःख पहुंचावेगी; अतः मुझे कोई और कमरा दे दो, ताकि मैं इस कमरेमें न मरूँ।’ मेरे प्रति उनका बचपनसे ही, जब कि मैंने उन्हें समझा भी नहीं था, तबसे, ऐसा ही प्रेम था।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि टाशियाना ऐलेक्ज़ेंड्रोव्नाका मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उन्होंने मुझे पहले-पहल, बचपनमें प्रेमके आध्यात्मिक आनंदका पाठ पढ़ाया। यह शिक्षा उन्होंने पुस्तकों या उपदेशों द्वारा नहीं दी, बल्कि अपने संपूर्ण जीवनसे उन्होंने मुझे प्रेमसे लबालब भर दिया।

मैंने यह देखा और अनुभव किया कि उन्हें प्रेम करनेमें कितना आनंद आता है। मैं स्वयं भी प्रेमके उस आनंदको समझता था। दूसरी बात जो मैंने उनसे सीखी, वह शांत और स्थिर जीवनका आनंद था।

[अर्द्ध-विक्षिप्त साधुओंके संबंधमें, जो एक तीर्थ-स्थानसे दूसरे तीर्थ-स्थानमें घूमा करते थे और रूसमें जहां-तहां दिखाई पड़ते थे और उनमेंसे कुछ टॉल्सटॉयके घर भी जब-तब आया करते थे, वह लिखते हैं:]

ग्रीशा (जिसका 'बचपन'में उल्लेख है) एक काल्पनिक चरित्र था । इस तरहके 'नाना' साधु हमारे घर पर आते रहते थे । मैं उन्हें बड़े आदरकी दृष्टिसे देखना सीख गया था । इसके लिए मैं उन लोगोंका आभारी हूँ जिन्होंने मुझे शिक्षा-दीक्षा दी । यद्यपि उनमेंसे कुछ ऐसे भी थे जो शुद्ध हृदयके नहीं थे और जिनके जीवनमें किसी समय कमज़ोरियां थीं, परंतु उसके जीवनका लक्ष्य और उद्देश्य विवेक-शून्य होते हुए भी बहुत ऊंचा था, और मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि मैं बचपनसे ही उनकी महानता पहचानने लगा । उनका आचरण एक प्रकारसे मारकस औरिलिअसके इस कथनका पूर्ति करता था कि 'एक अच्छे जीवनके लिए घृणा मह लेनेसे बढ़कर संसारमें दूसरी चीज़ नहीं है ।' अच्छे कामोंकी दूसरोंसे प्रशंसा पानेका लोभ इतना हानिकारक और अनिवार्य है कि हमें उन लोगोंके साथ सहानुभूति दिखानी ही चाहिए, जो प्रशंसासे दूर रहनेकी अथवा कभी-कभी दूसरोंके मनमें घृणा करनेकी चेष्टा करते हैं । ऐसे ही साधुओंमेंसे मेरो बहिनको धर्म-माता मेरिया जेरासीमोव्ना, अर्द्ध-मूढ़ एबडोकीमुश्का तथा अन्य थे, जो हमारे घर आया करते थे ।

और हम बच्चे इन साधुओंके भजन न सुनकर अपने मालीके सहायक अकीम नामक मूर्ख आदमीके भजन सुना करते थे । उसके भजन मुझे चकित कर देते थे और हृदयस्पर्शां लगते थे । इन भजनोंमें वह ईश्वरको एक जीवित मनुष्यके समान संबोधन करता और हृदयमें पक्के विश्वास और धारणाके साथ कहता—'तुम मुझे अच्छा करने वाले हो, तुम मुझे मुक्ति दिलाने वाले हो ।' उसके बाद वह क्रयामतके दिनके संबंधमें भजन गाता कि किस प्रकार ईश्वर उस दिन न्याय और अन्यायको अलग करेगा और पापियोंकी आंखोंमें पीली रेत भर देगा ।

मेरे भाइयों और बहिनोंके अतिरिक्त मेरी ही उम्रकी एक लड़की ड्यूनेशका टेमीअशोव भी हमारे घरमें तब रहती थी, जब मैं पांच वर्षका था। यह बताना जरूरी है कि वह कौन थी और किस प्रकार हमारे यहाँ आई। जब हम बच्चे थे तो उस समय हमारे घर पर हमारे फूफा यशकोव जब-तब आया करते थे। उनकी काली मूंछ, गलमूच्छा और चश्मा हम बच्चोंको अच्छेमें डाल देता था। दूसरे सज्जन मेरे धर्म-पिता एस. आई. याजीकोव थे। उनके शरीरसे हमेशा तमाखूकी बदबू आया करती थी, और मंह पर लटकती हुई चमड़ीकी वजहसे उनकी सूरत बड़ी भद्दी लगती थी। वह अजीब-अजीब तरहसे मुंह मोड़ा करते थे। इन दो सज्जनों तथा हमारे दो पड़ोसियों ओगरेव और इस्लेनेवके अतिरिक्त हमारी माताके (पीहरके रिश्तेके) एक और दूरके संबंधी आया करते थे। यह एक धनी अविवाहित सज्जन थे। उनका नाम टेमीअशोव था। वह पिताजीको भाई कहकर पुकारा करते और उनके प्रति अगाध प्रेम रखते थे। वह यास्नया पॉल्यानासे ४० वर्स्ट* (लगभग २७ मील) की दूरी पर पीरोगोव नामक गांवमें रहते थे। एक बार वह वहांसे सूअरके छोटे-छोटे दूध-पीते बच्चे लाये जिनकी पूंछें गोल जिराटी हुई थीं। उन्हें नौकरोंके कमरेमें एक बड़ी रकाबीमें रख दिया। मेरे मनमें टेमीअशोव, पीरोगोव और सूअरके बच्चे तीनोंका चित्र एक ही साथ जुड़ गया।

इसके अतिरिक्त टेमीअशोव हम बच्चोंको इस कारण भी अच्छे लगते कि वह गियानो पर नाचनेकी एक गत (जिस वह केवल वही एक गत बजा भी सकते थे) बजाते थे और हम सब बच्चोंको उसपर नचाते थे। हम पूछते कि यह कौन-सा नाच है तो कहते इस गत पर सब तरहके नाच नाचे जा सकते हैं। हमलोग भी ऐसा मौका पाकर बड़े प्रसन्न होते थे।

एक दिन एक जाड़ेकी रात थी। हम चाय पी चुके थे और शीघ्र ही बिस्तरों पर ले जाये जाने वाले थे। ~~मेरी~~ आंखें नींदके मारे भंपी जा रही थीं। उसी समय अचानक नौकरोंके मकानोंकी ओरसे बड़े दरवाजेसे

* एक वर्स्ट ३२०० फीटका होता है

होकर एक आदमी ड्राइंग रूममें, जहां हम सब केवल दो मोमबत्तियोंके धुंधले प्रकाशमें बैठे हुए थे, हलके-हलके पैर रखता हुआ जल्दीसे आया और बीच कमरेमें पहुंचते ही घुटनोंके बल गिर पड़ा। उसके हाथमें जो सुलगती हुई सिगरेट-पाइप थी, वह ज़मीन पर गिर पड़ी और उससे जो चिनगारियां उड़ीं, उनका प्रकाश उसके मुख पर पड़ा। हमने देखा कि वह टेमीअशोव है। वह पिताजीके सामने घुटने टेक कर कुछ प्रार्थना कर रहा था। मैं नहीं जानता कि उसने क्या कहा, क्योंकि मैं उसकी बात सुन ही न सका। मुझे तो बादमें यह मालूम हुआ कि वह मेरे पिताके सामने घुटने टेक कर इसलिए बैठा कि वह अपनी नाजायज़ लड़की ड्यूनेश्काको, जिसके विषयमें वह पहले भी पिताजीसे कह चुका था, उनके पास लाया था और उनसे प्रार्थना कर रहा था कि वह उसे अपने पास रखें और अपने बच्चोंके साथ-साथ शिक्षा दें। उसके बादसे ही हमने अपने बीच उस चौड़े मंहवाली बालिका ड्यूनेश्का और उसकी धाय-मा एंड्रवशीयाको देखा। धाय लंबे कदकी एक बूढ़ी औरत थी। उसके मंह पर भुर्रिया पड़ी हुई थीं और तुर्की मुर्गेकी-सी उसकी टुड्ढी पर एक गांठ थी, जिसे हम घूरकर देखा करते थे।

ड्यूनेश्काका हमारे घर आना पिताजी और टेमीअशोवमें एक जटिल लेन-देनके फलस्वरूप हुआ था।

टेमीअशोव बहुत धनी आदमी था; लेकिन उसके कोई जायज़ संतान न थी। हा, दो लड़कियां थीं; एक तो ड्यूनेश्का और दूसरी कूबर्डा वेरोश्का, जिसकी मां मरफूशा एक दासीकी लड़की थी। टेमीअशोवकी उत्तराधिकारिणी उसकी दो बहिनें थीं। वह उनके लिए अपनी सारी शेष संपत्ति छोड़ रहा था; लेकिन पीरोगोवकी जागीर, जहां वह रहता था, पिताजीको इस शर्त पर देना चाहता था कि पिताजी उस जागीरका मूल्य ३ लाख रूबल उन दोनों लड़कियोंको दें (पीरोगोव जागीरके संबंधमें यह कह जाता था कि इसका मूल्य इससे कहीं ज्यादा है, क्योंकि उसमें सोने की खान है)। इसके लिए यह चाल चली गई कि टेमीअशोव पिताजीको एक रसीद देगा,

जिममें तीन लाख रूबलके लिए पिरोगोव जागीर मेरे पिताको बेची गई दिखाई जायगी। मेरे पिताने अपने हाथसे एक-एक लाख रूबलके तीन प्रनोट लिखकर इस्लेनेव, याज़ीकोव और ग्लेबोवको दिये। टेमाग्रशावकी मृत्यु होने पर पिताजीको वह जागीर मिलनी थी, जिसके बदलेमें उन्हें तीन लाख रूबल उन दोनों कन्याओंको देने थे। (इस्लेनेव याज़ीकोव और ग्लेबोवको पहले ही बतला दिया गया था कि उन्हें उनके नामसे प्रनोट क्यों दिये जा रहे हैं)।

शायद मैं सारी योजनाको ठीकसे नहीं बतला सका होऊँ, लेकिन इतना मुझे निश्चित रूपसे मालूम है कि मेरे पिताकी मृत्युके बाद वह जागीर हमें मिली और इस्लेनेव, ग्लेबोव और याज़ीकोवके पास तीन प्रनोट निकले। जब हमारे संरक्षकने उन प्रनोटोंका रूपया दिया तो इस्लेनेव और ग्लेबोवने तो एक-एक लाख रूबल दे दिये, लेकिन याज़ीकोव सारा रूपया हड़प गया।

ड्यूनेशका हमारे साथ रहती थी। वह सीधी-सादी और शांत लड़की थी; लेकिन वह चतुर लड़की नहीं थी, और बहुत रोने वाली थी। मुझे याद है कि उसे अक्षर-ज्ञान करानेका काम मुझे सौंपा गया था, क्योंकि मुझे उस वक्त तक फ्रेंच भाषा पढ़ना आ गया था। पहले तो सब ठीक-ठीक चलता रहा (मैं भी पांच सालका था और वह भी) परंतु बादमें वह संभवतः उकता उठी और जो शब्द मैं उसे बताता, उसका ठीक-ठीक उच्चारण नहीं करती। मैं उसे विवश करता। वह रोने लगती और उसके साथ-साथ मैं भी रोने लगता और जिस समय घरके लोग हमें लेने आते, उस समय हमारी आंखोंमें इतने आंसू भरे होते कि हम एक भी शब्द नहीं बोल पाते थे।

उसके बारेमें दूसरी बात मुझे यह याद है कि जब कभी रकाबीमेंसे एक बेर गायब हो जाता और उसके चुरानेवालाका पता न चलता तो फीडर इवानोविच बड़ी गंभीर मुद्रा बनाकर और हमारी ओर दृष्टिपात न करते हुए कहता कि बेर खानेमें तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन, अगर कोई

उसकी गुठली भी निगल गया तो उसकी मृत्यु हो सकती है। वस, ड्यूनेशका तुरंत भयभीत होकर बोल उठती कि नहीं, उसने गुठली उगल दी है। एक बार उसके फूट-फूट कर रोनेकी अच्छी तरह याद है। मेरा भाई मिटेंका (डिमिटी) और वह दोनो एक दूसरेके मुहमें एक पीतलकी जंजीर उगलनेका खेल खेल रहे थे। खेलते-खेलते उसने उस जंजीरको इतने जोरसे उगला और मेरे भाईने अपना मुंह इतना अधिक खोल दिया कि जंजीर उसके गलेसे नीचे उतरकर पेटमें चल गई। उस समय वह नौ-नौ आंसू रोया और उस समयतक रोती रही जबतक डाक्टरने आकर हम सबको शांति नहीं दिलाई।

वह चतुर लड़की नहीं थी, लेकिन बड़ी सीधी-सादी और अच्छी लड़की थी और सबसे बड़ी बात तो यह कि वह अत्यंत पवित्र मनकी थी और हमारे बीच सदा भाई-बहिनका संबंध रहा।

* * * *

[अपने नौकरांके संबंध में टॉल्स्टॉयने लिखा है ।]

प्रास्कोव्या ईसेव्नाका काफी ठीक-ठीक वर्णन मैंने बचपनमें नटाल्या सेविश्नाके नामसे किया है। उसके विषयमें मैंने जो कुछ लिखा है, वह उसके जीवनसे लेकर ही लिखा है। प्रास्कोव्या ईसेव्नाका सब आदर करते थे। वह घरका प्रबंध करती थी और हम बच्चोंका संदूक उसीके छोटे कमरेमें रहता था। उसके संबंधमें मुझे सबसे सुखद स्मृति यह है कि उसके छोटेसे कमरेमें बैठे हुए हम पढ़ाई के बाद अथवा बीचमें ही उससे बात करने लगते थे अथवा उसकी बातें सुना करते थे। शायद वह हमारी उस आनंदमय सुकुमार और विकासशील अवस्थामें, हमें देखकर प्रसन्न होती थी। 'प्रास्कोव्या ईसेव्ना, दादा लड़ाई में किस प्रकार जाते हैं ? क्या घोड़े पर ?' इस प्रकार उससे बात छेड़नेके लिए कोई उससे पूछ बैठता।

'वह घोड़ेकी पीठ पर और पैदल सब तरह लड़ाईमें लड़े; तभी तो वह पधान सेनापति बना दिये गए' वह जवाब देती और साथ ही आलमारी-

मेंसे थोड़ी-सी धूप, जिसे वह ओशेकोवकी धूप कहती, निकाल लेती। उसके कहनेसे यही मालूम होता था कि हमारे दादा वह धूप ओशेकोवके घेरेसे लाये थे। वह देवमूर्तिके सामने जलती हुई मोमबत्तीसे एक कागज जलाती और उससे उस धूपको भी जला देती, जिससे बड़ी सुंदर सुगंध निकलती थी।

एक गीले तौलियेसे मुझे पीटकर मेरा अपमान करनेके अलावा (जैसा कि मैंने 'बचपन'में वर्णन किया है) उसने एक बार और मुझे गुस्सा किया था। और कामोंके साथ उसका एक काम यह भी था कि जब आवश्यकता पड़े हमारे एनीमा लगाये। बात उस समयकी है जब मैंने स्त्रियोंके कमरेमें रहना छोड़ दिया था और नीचेकी मंज़िलमें थियोडोर ईवानोविचके पास आ गया था। एक दिन सबेरे हम सब बस सोकर उठे ही थे और मेरे बड़े भाइयोंने कपड़े भी पहन लिये थे। मैं ज़रा पीछे पड़ गया था। मैं अपने सोनेके कपड़े उतारकर कपड़े पहनने ही वाला था कि प्रास्कोव्या ईसेव्ना जल्दी-जल्दी पैर उठाकर चलती हुई अपना सारा सामान लेकर आ गई। इस सामानमें एक रबड़की नली थी जो किसी कांगण कपड़ेमें लिपटी हुई थी, और उसकी केवल हड्डीकी पीली टोटी ही दिखाई पड़ती थी, और जैतूनके तेलसे भरी हुई एक रकाबी थी। इस रकाबीमें नलीका मुंह डूबा हुआ था। मुझे देखकर वह यह समझी कि मैं भी उन बच्चोंमें हूँ, जिन्हें बुझाने एनीमा देनेको कहा है। वास्तवमें वह मेरे भाईको लगाना था, लेकिन मेरा भाई संयोगसे अथवा छुलसे अचानक यह बात पहलेसे ही भांप गया। वस्तुतः हम सभी बच्चे प्रास्कोव्यासे एनीमा लगवानेसे बहुत घबराते थे। अतः मेरा भाई शीघ्र ही कपड़े पहनकर सोनेके कमरेके बाहर चला गया था; और मेरे शपथपूर्वक यह कहने पर भी कि मुझे एनीमा नहीं लगाना है, प्रास्कोव्या न मानी और एनीमा लगा ही दिया।

उसकी ईमानदारी और वफ़ादारीके कारण तो मैं उससे प्रेम करता ही था, लेकिन इसलिए और करता था कि वह और बूढ़ी अन्ना इवेनोव्ना ओशेकोवके घेरेसे संबंधित मेरे दादाके रहस्यमय जीवनकी प्रतिनिधि थीं।

अन्ना इवेनोव्ना हमारी नौकर नहीं रही थी; लेकिन मैंने उसे एक-दो बार अपने घर पर देखा था। लोग कहते थे कि उसकी आयु १०० वर्षकी है और उसे पूगाशेव याद है। उसकी आंखें बहुत काली थीं और एक ही दात बच रहा था। उसका बुढ़ापा हम बच्चोंको बहुत ही भयानक मालूम पड़ता था।

छोटी धाय टाशियाना फिलिप्पोव्ना सांवले रंगकी छोटे, परंतु मोटे-मोटे हाथ वाली टिगने कदकी जवान स्त्री थी। वह बूढ़ी धाय ऐनुश्काकी मदद किया करती थी। ऐनुश्काके विषयमें तो मुझे कुछ भी याद नहीं; क्योंकि उस समय मैं बहुत छोटा था। मुझे अपने होने या न होनेका भान उस समय होता था जब कि मैं उसके पास होता था; चूंकि उस समय मैं अपनेको देख और समझ नहीं सकता था, इसलिए मैं उसे भी देख और समझ नहीं सकता था; अतः उसके बारेमें मुझे कुछ भी याद नहीं। मैं उस समय इतना छोटा था कि मुझे अपना ही कुछ ज्ञान नहीं था, फिर धाय का कैसे होता ?

लेकिन मुझे ड्यूनेश्काकी धाय एवप्रेक्शिशाया और उसकी गर्दनकी गांठ खूब याद है। हम लोग बारी-बारीसे उसकी गर्दनकी गांठ छूते थे। हमें यह बात बिलकुल नई लगती थी कि हमारी धाय ऐनुश्का सबकी धाय नहीं है और ड्यूनेश्का अपने लिए पिरोगोवासे खास तौर पर धाय लाई है।

धाय टाशियाना फिलिप्पोव्नाकी तो मुझे खूब याद है, क्योंकि आगे चल कर वह मेरी भतीजियोंकी और फिर मेरे सबसे बड़े लड़केकी धाय ही वह उन स्नेहशील प्राणियोंमें थी, जो अपने पौष्य-पुत्रोंसे इतना प्रेम करने लगती हैं कि फिर उनके सारे हित उन्हींमें केंद्रित हो जाते हैं। अपने संबंधियोंसे फिर उनका इतना ही नाता रह जाता है कि या तो वे उन्हें फुसलाकर कुछ रुपया ऐंठ लें या उनका मृत्युके बाद उनका संपत्ति अधिकारी हो जायें।

ऐसी स्त्रियोंके भाई, पति और लड़के बड़े उड़ाऊ हाते हैं। जहातक

मुझे याद है। टाशियाना फिलिप्पोव्नाका पति और पुत्र, दोनों ऐसे ही थे। इसी मकानमें उसी जगह, जहांपर बैठा-बैठा मैं यह संस्मरण लिख रहा हूँ, मैंने उसको बड़े कष्टसे, लेकिन साथ ही शांतिसे मरते देखा है।

उसका भाई निकोलस फिलिप्पोविच हमारा कोचवान था। जागीरदारोंके अधिकांश लड़कोंके समान हम भी उसे केवल प्यार ही नहीं करते थे, बल्कि बड़े मान और आदरकी दृष्टिसे देखते थे। वह विशेष मांटे जूते पहिनता था। उसके पास खड़े होने पर अस्तबलकी बू आती थी। उसकी आवाज़ मधुर और गंभीर थी।

खानसामा वेसिली ट्रुवेत्सकाय का उल्लेख करना भी जरूरी है। वह मिलनसार और दयालु व्यक्ति था। उसे बच्चोंसे विशेषकर सर्जोसे बहुत प्रेम था। बादमें सर्जोके यहां वह नौकर हुआ और वहीं उसका देहात भी हुआ। वह हमें एक बड़े थालमें बिठाकर ऊपर रसोई घरमें ले जाता और फिर नीचे ले आता। इसमें हमें बड़ा आनंद आता और हम उससे कहते—“हमें भी! अब मेरी बारी है।” मुझे उसकी प्रेमभरी तिरछी मुसकान याद है। जब वह हमें गोदमें ले लेता था तो उसका भुर्रियां पड़ा हुआ चेहरा और उसकी गर्दन साफ दिखाई पड़ती थी। मुझे उस वक्तकी याद है जब वह स्कारवाचेव्काको बिदा हो रहा था। यह जागीर कुर्स्क प्रांतमें थी और पेट्रोव्स्कीसे मेरे पिताको विरासतमें मिली थी। वेसिली ट्रुवेत्सकायकी बिदाई बड़े दिनकी छुट्टियोंमें हुई थी, जबकि हम बच्चे कुछ दासोंके साथ बड़े कमरेमें ‘छोटे रूबल, जाओ’ खेल खेल रहे थे।

बड़े दिनके त्योहारके कुछ बातें भी कह देनी चाहियें। इन दिनों हमारे घरके सब दास, जिनकी संख्या लगभग ३०के थी, बहुरूपियोंके समान भिन्न-भिन्न प्रकारके कपड़े पहनकर बड़े कमरेमें इकट्ठे होते और बहुतसे खेल खेला करते थे। ग्रेगोरी, जो सिर्फ ऐसे ही मौकों पर हमारे यहां आया करता था, बाजा बजाता और सब लोग नाचते थे। इससे हमारा बड़ा मनोविनोद होता था। कपड़े वे ही पिछले सालोंके होते थे। कोई भेड़िया बनता, कोई मदारी। कोई बकरीका रूप धारण करता। कुछ तुर्कों

आदमी औरतोंका बाना पहिनते, कुछ डाकू और किसान स्त्री और पुरुषोंके भेष धरते थे । मुझे याद है कि इन विचित्र पोशाकोंमें कुछ लोग बहुत सुंदर लगते थे । विशेषकर तुर्की लडकी माशम तो बहुत ही अच्छी लगती थी । कभी-कभी बुआ हमें भी ऐसे ही कपड़े पहना देती थी । जवाहरात लगी हुई पेट्टी और सोने-चांदीके कामका एक जाल पहननेके लिए सभी उत्सुक रहते थे । मैं भी अपने होठों पर कोयलासे काली-काली मूँछें बनाकर अपनेको बड़ा स्वरूपवान समझने लगता था । मैं शीशेमें अपना मुँह काली-काली मूँछें और भौंहें देखता; और यद्यपि मुझे चाहिए था कि मैं एक तुर्ककी भांति गंभीर मुद्रा बना लूं, लेकिन मैं खुशीसे अपनी मुसकराहट नहीं रोक पाता था । बहुरूपिये सभी कमरोंमें जाते, और वहां उन्हें सुस्वादु भोजन खानेको मिलता था ।

एक बार जब मैं बहुत छोटा था, बड़े दिनकी छुट्टियोंमें इस्लेनेव-परिवारके सब लोग—इस्लेनेव (मेरी पत्नीके दादा), उनके तीनों लड़के और तीनों लड़कियां स्वांग भरकर हमारे यहां आये । उन्होंने आश्चर्यजनक भेष बना रखे थे । उनमें एक शृंगारदान बना हुआ था; दूसरा जूता, तीसरा विदूषक और चौथा कुछ और बना हुआ था । वे तीस मील चलकर गांवमें आये और वहां उन्होंने अपना-अपना स्वांग बनाया और फिर हमारे बड़े कमरेमें आये । इस्लेनेव पियानो बजाने बैठ गये, और अपने बनाये हुए गाने बड़े लयसे गाने लगे, जो मुझे अब भी याद हैं । उनकी कुछ पक्तियां इस प्रकार थीं ।

नये वर्षमें नाच-रंग कर,

हम अभिवादन करने आये ।

सुख पायेंगे, यदि तुम सबका,

हम कुछ भी मन बहला पाये ॥

ये सब बातें बड़ी आश्चर्यकारी थीं और शायद बड़े लोग इनसे बहुत प्रसन्न भी होते थे; लेकिन हम बच्चोंका तो घरके दासोंके स्वांगमें ही आनंद आता था ।

ये सब उत्सव बड़े दिनसे आरंभ होकर नये सालमें जाकर समाप्त हात थे, लेकिन कभी-कभी वे १२ वें दिनकी रात तक चलते थे। पर नये सालके बाद थोड़े आदमी आते थे और उत्सव फीके पड़ जाते थे। इसी दिन वेसिली स्कारवाचेव्काके लिये रवना हुआ। मुझे याद है कि हम लोग अपने बड़े कमरेके धुंधले प्रकाशमें चमड़ेकी गह्रियोदार कुर्सियोंपर एक कोने में घेरा-सा बनाकर बैठे हुए 'छोटे रूबल, जाओ, खेल खेल रहे थे। हम लोग एक दूसरेको रूबल देते जाते थे और गाते जाते थे—'छोटे रूबल जाओ— छोटे रूबल जाओ।' फिर हममेंसे एक लड़का उस रूबल को दूँ देने जाता। मुझे याद है कि एक दास-पुत्री इन पंक्तियोंको बड़े ही सुंदर और मधुर स्वरसे गा रही थी। इसी समय एकाएक दरवाजा खुला और वेसिली आया। वह अपने सब कपड़े-लत्ते पहने हुए था। उसके हाथमें थाल-वाल भी नहीं था। वह कमरेमेंसे होता हुआ पढ़नेके कमरेमें चला गया। उसी समय मालूम हुआ कि वह कारिंदा बनकर स्कारवाचेव्का जा रहा है। मुझे इस बातसे खुशी हुई कि उसकी तरक्की हो गई है। लेकिन साथ ही मुझे दुःख भी हुआ कि वह अब यहां नहीं आवेगा और हमें बिठा-बिठाकर ऊपर रसोईघरमें नहीं ले जायगा। वास्तवमें उस समय न तो मैं यह समझ सका, न यह विश्वास ही कर सका कि इतना बड़ा परिवर्तन संभव हो सकता है। मैं बहुत अधिक उदास हो गया और 'छोटे रूबल जाओ' पद हृदयको सालने लगा और जब वेसिली हमारी बुआओंको प्रणामकर लौटा और अपनी मृदुल मुसकराहटके साथ हमारे पास आकर हमारे कंधोका चुम्मा लेने लगा, उस समय जीवनमें पहली बार मुझे इस जीवनकी अस्थिरता पर भय लगा और प्रिय वासिलीके प्रति करुणा और प्रेम उमड़ पड़ा।

लेकिन बादमें जब मैं दुबारा वेसिलीसे अपने भाईके कारिंदेके रूपमें मिला, तब पहलेकी भ्रातृभावकी वह पवित्र और मानवी भावना मुझमें नहीं रही थी।

[टॉल्स्टॉयके तीन बड़े भाई थे। उनमें बड़े निकोलस थे, जिनको

घरमें निकोलेंका कहकर पुकारते थे और टॉल्स्टॉय सबसे अधिक प्रेम और संमान करते थे । इनका टॉल्स्टॉयके जीवनपर बहुत प्रभाव पड़ा । उनके विषयमें टॉल्स्टॉय लिखते हैं ।]

वह बाल्यकालमें बड़े तेज़ और प्रतिभाशाली थे और बड़े होनेपर उनकी प्रतिभा और भी विकसित हुई । तुर्गनेव उनके विषयमें ठीक ही कहते थे कि उनमें ऐसी कोई कमी नहीं है जो एक अच्छा लेखक बननेके लिये ज़रूरी है । उनमें एक अच्छे लेखकके कई गुण थे । उनमें कलाकी भावना बड़ी तेज़ थी । क्या बात किस प्रकार किस स्थानपर लिखी जानो चाहिए, यह भी वह अच्छी तरह जानते थे । उनका व्यंग भी बहुत प्रसन्न करनेवाला और अच्छा होता था । उनकी कल्पना तेज़ और अनंत थी । वह जीवनका उच्च आदर्श रखते थे । इन सबके अतिरिक्त एक विशेष गुण यह था कि उन्हें अहंकार छू भी नहीं गया था । उनकी कल्पना इतनी तेज़ थी कि वह घंटों परियो या भूतोंकी कहानियां अथवा श्रीमती रेडक्लिफके दंगकी अन्य मनोरंजक कहानियां बिना रुके हुए सुना सकते थे; और उन कहानियोंमें इतनी सजीवता और स्वाधीनता होती थी कि उनको सुनते समय आदमी यह भूल जाता था कि वे सच्ची नहीं हैं बल्कि काल्पनिक हैं । जिस समय वह कहानी सुना या पढ़ रहे न होते (वह पढ़ते बहुत थे) उस समय चित्र बनाया करते थे । सींग और चढ़ी मंछों सहित शैतानके चित्र बहुत तरहके और बहुतसे काम करते हुए बनाते थे । ये चित्र भी एकदम काल्पनिक होते थे ।

जिस समय मेरे भाई डिमित्री ६ सालके और सर्जी ७ वर्षके थे, उस समय निकोलसने ही सबसे यह कहा था कि उन्हें एक ऐसा मंत्र मालूम है, जिसे यदि बताया जाये तो संसारमें कोई भी दुःखी न रहे, कोई बीमारी न हो, किसीको कोई कष्ट न हो, कोई आदमी किसीसे नाराज़ न हो, सब एक-दूसरेसे प्रेम करें और परस्पर धर्म-भाई बन जायें । यही नहीं, हमने तो धर्म-भाईका एक खेल खेलना भी आरंभ किया, जिसमें हम सब कुर्सियोंके नीचे बैठ जाते और दुशालोंका पर्दा डालकर अपनेको छुपा

लेते, एक दूसरेसे सटकर और लिपटकर बैठ जाते अथवा अंधेरेमें एक दूसरेके पैरों पर पड़ जाते ।

हमें यह धर्म-भ्रातृत्व तो बतला दिया गया, किंतु असली मंत्र नहीं बतलाया गया जिससे कि हर एक मनुष्यकी पीड़ाएं और दुःख मिट जाते और वे एक दूसरेसे लड़ना-भगड़ना और गुस्सा होना बंद कर देते और अनंत आनंद अनुभव करते । उन्होंने कहा कि मैंने वह मंत्र एक हरी लकड़ीपर लिखकर उसे एक खड्डुके किनारे एक सड़कके पास गाड़ दिया है । और चूंकि मृत्युके बाद मुझे तो कहीं-न-कहीं दफनाया ही जाता, अतः मैंने यह इच्छा प्रकट की कि मेरी मृत्युके बाद मुझे निकोलैककी स्मृतिमें उसी स्थानपर, जहां कि वह लकड़ी गाड़ी गई थी, दफनाया जाय । उस लकड़ीके अतिरिक्त वह हमें फेनकेरोनीव पहाड़ीपर भी ले जानेके लिये कहते थे; परंतु इस शर्तपर कि हम एक बोनो पर खड़े हों और सफेद रीछुका विचार भी मनमें न आने दें । मुझे याद है कि मैं अधिकतर एक कोनेमें खड़ा रहता और इस बातका प्रयत्न करता कि मुझे सफेद रीछुका ध्यान न आये । परंतु उसका ध्यान आये बिना न रहता । दूसरी शर्त यह थी कि फर्शपर रक्खे तख्तोंकी दरारपर बिना थराये या बिना कांपे चलना पड़ेगा । तीसरी शर्त यह थी कि एक साल तक जीवित या मृत या पका हुआ खरगोश न देखो । इसके साथ-साथ यह भी शपथ लेनी पड़ती थी कि हम यह भेद किसीको न बतलायेंगे । जो कोई भी आदमी निकोलसकी इन शर्तोंको तथा इनके अतिरिक्त उन शर्तोंको, जो बादमें वह बतावे, पालन करे, तो उसकी एक इच्छा, चाहे वह कुछ भी हो, अवश्य पूर्ण हो जायगी ।

[अपने अन्य भाइयोंके विषयमें टॉल्स्टॉय लिखते हैं ।]

डिमित्री मेरे साथी थे । निकोलसका तो मैं-संमान करता था, परंतु सर्जोंको देखकर मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता था । मैं उनका अनुसरण करता, उनसे प्रेम करता और यही कामना किया करता था कि मैं बिल्कुल उन-जैसा हो जाऊं । उनकी सुंदरता, मधुर स्वर (वह सदा गाते

रहते थे), उनकी चित्रकला, उनकी चपलता, प्रफुल्लता और विशेष कर उनके स्वाभाविक आत्माभिमानको देखकर मैं आनंद से फूल उठता था । मुझे अपना बड़ा खयाल रहता था और मैं सदा इस बातका, चाहे इसमें मेरी गलती हो या न हो, ध्यान रखता था कि दूसरे लोग मेरे विषयमें क्या खयाल रखते हैं । इसी कारण मेरे जीवनका आनंद मिट जाता था और संभवतः इसीलिए मैं दूसरे आदमियोंमें इससे विपरीत गुण अर्थात् स्वभाविक आत्मश्लाघा देखना पसंद करता था । इसीलिए मैं सर्जोसे प्रेम करता था । लेकिन उस भावनाको बतलानेके लिए 'प्रेम' बिल्कुल ठीक शब्द नहीं है । मैं निकोलससे प्रेम करता था लेकिन सर्जोको देखकर तो मैं अपनेको भूस-सा जाता था, मानो मैं अपनेसे कोई भिन्न और अबृह्म वस्तु पाकर मंत्रमुग्ध हो गया हूं । उनका जीवन वास्तवमें मनुष्यका जीवन था— वह बहुत सुंदर परंतु मेरे लिए अगम्य, रहस्यपूर्ण और इसी कारण बहुत आकर्षक था ।

अभी थोड़े दिन हुए* उनकी मृत्यु हो गई । अपनी आखिरी बीमारीमें और अपनी मृत्यु-शय्या पर भी वह मेरे लिये उतने ही गहन, अगाध और प्रिय थे जैसे कि बचपनके दिनोंमें । बादमें बुढ़ापेमें वह मुझे ज्यादा प्यार करने लगे थे, अपने प्रति मेरे प्रेमका आदर करते थे, मुझपर अभिमान करते थे और विवादास्पद विषयोंमें मेरे मतसे सहमत होनेका प्रयत्न करते, लेकिन हो नहीं सकते थे । वह जैसे थे अंत तक वैसे ही रहे । वह अद्वितीय, विलक्षण, सुंदर, कुलीन, आत्माभिमानी और इन सबसे अधिक इतने सच्चे और शुद्ध-हृदय व्यक्ति थे कि मैंने आज तक वैसा दूसरा व्यक्ति नहीं देखा । वह जैसे अंदरसे थे, वैसे ही बाहरसे थे । वह कोई बात छिपाते नहीं थे और जो थे उससे बढ़कर किसीके सामने अपनेको प्रकट न करते थे । -

निकोलसके साथ तो मैं रहना, बातें करना और विचार-विनिमय करना पसंद करता था । सर्जोका मैं पदानुसरण करना चाहता था । उनका

अनुसरण करना मैंने बहुत बचपनसे ही आरंभ कर दिया था। वह मुर्गियां पालते थे, अतः मैंने भी मुर्गियां रखनी आरंभ करदीं। पशु-पक्षियोंके जीवनका अध्ययन करनेका वह मेरा पहला ही अवसर था। मुझे मुर्गियोंकी बहुत-सी जातियां, भूरी, चितकवरी और कलंगी वाली, अब भी याद हैं। मुझे याद है कि किस प्रकार हमारे बुलाने पर वह दौड़ कर आतीं, किस प्रकार हम उन्हें दाना डालते और हम उस डच मुर्गेसे, जो उनके साथ दुर्व्यवहार करता था, कितनी घृणा करते थे। सर्जिने ही पहले-पहल मुर्गियोंके बच्चे मंगाये और उन्हें पालना शुरू किया। मैंने तो केवल उनकी नकल करनेके लिए उन्हें पाला था। सर्जिं एक कागज पर मुर्गे-मुर्गियोंके चित्र बनाते और उनमें बड़े सुंदर रंग भरते। वे मुझे बड़े आश्चर्यजनक लगते थे। मैं भी यही करता था; लेकिन मेरे चित्र बड़े भद्दे होते थे। (फिर भी मैं इस कलामें लंबी-चौड़ी बातें बनाकर ही अभ्यस्त होने की आशा करता था)। जब सर्जियोंके दिन खिड़कियोंमें दोहरे किवाड़ लगा दिये गये, तब सर्जिं ने मुर्गियोंको खाना देनेका एक नया उपाय खोज निकाला। वह किवाड़ोंकी चाबियोंके छेदमेंसे सफेद और काली रोटीके लंबे-लंबे टुकड़े बनाकर उन्हें दिया करते। मैं भी यही करता था।

मेरे बाल-मस्तिष्क पर एक मामूली-सी घटना ने बड़ा प्रभाव डाला। मुझे वह घटना इतनी अच्छी तरह याद है, मानों वह अभी घटी हो। टेमीअशोव हम बच्चोंके कमरेमें बैठा हुआ फीडर ईवानोविचके साथ बातचीत कर रहा था। न जाने कैसे उपवासकी बात चल पड़ी और अच्छे-स्वभाव वाले टेमीअशोवने सीधे-सादे भावसे कहा—“मेरे पास एक रसोइया था, जो व्रतके दिन भी मांस खाता था। मैंने उसे फौजमें भेज दिया।” मुझे यह घटना अब इसलिए याद है कि उस समय मुझे यह बात एकदम अजीब-सी मालूम पड़ी और मेरी समझमें ज़रा भी नहीं आई।

एक घटना और है और वह फेरोवस्कोकी जागीरके* उत्तराधिकारके

* इस जागीरमें कुर्क प्रांतके स्कारबाचेव्का और नेरच नामक दो जागीरें थीं।

संबंधमें थी। पेरोवस्कोकी जागीरका एक भूतपूर्व दास इल्या मेट्रोफेनिच था। वह एक लंबा तथा बूढ़ा आदमी था। उसके बाल सफेद हो गये थे। वह पक्का शराबी और अपने समयके सारे हथकंडोंमें उस्ताद था। उसकी सहायतासे इस जागीरके उत्तराधिकारके संबंधमें जो मुकदमा चला था वह जीत लिया गया और नेरुचसे भरी हुई गाड़ियों एवं घोड़ोंके भुंड-के-भुंड आये, जिनकी मुझे अब भी याद है। इल्याने इस जागीरको दिलानेमें बहुत काम किया था, अतः इसके उपलक्षमें मृत्यु पर्यंत यास्नाया पोल्यानामें रहनेका उसका प्रबंध कर दिया गया।

मेरे बहनोई वेलेरियनके चाचा प्रसिद्ध 'अमेरिकन' थियोडोर टॉल्स्टॉय हमारे यहां आये थे, इसकी मुझे अच्छी तरह याद है। वे एक घोड़ा-गाड़ामें बैठकर आये थे, वे सीधे पिताजीके पढ़नेके कमरेमें पहुँचे और बोले, मेरे लिये खास तरहकी सूखी फ्रांसीसी रोटी मंगाइये। वह उसे लोडकर दूसरी रोटी खाते ही न थे। मेरे भाई सर्जिके दातांमें बड़े जोरका दर्द हो रहा था। थियोडोरने पूछा कि सर्जिके क्या हुआ? और जब उन्हें मालूम हुआ कि उसके दातांमें दर्द हो रहा है, तब उन्होंने कहा, अच्छा, मैं अभी जादूसे इसे बंद किये देता हूँ। वह पिताजीके पढ़नेके कमरेमें गये और भीतरसे दरवाजा बंद कर लिया। थोड़ी देर बाद वह मलमलके दो रूमाल, जिनके किनारों पर कुछ फूल-पत्तियां कढ़ी हुई थीं, हाथमें लेकर आये। उन्होंने दोनों रूमाल हमारी बुआको देते हुए कहा—'यह रूमाल बांधते ही दर्द मिट जायगा। और यह रूमाल लगाते ही उसे नींद आ जायगी।' बुआने वे रूमाल ले लिये और उन्हें उसी प्रकार रख दिया। हमारे मनमें यही खयाल बना रहा कि उन्होंने जैसा कहा था वैसा ही हुआ।

उनका हजामत बना हुआ कटोर, रुखा और दमकता हुआ सुंदर मुख, मुँहके कोनोंतक कटी हुई कलम और घुघुराले बाल मुझे बहुत अच्छे लगते थे। इस असाधारण, अपराधी और आकर्षक व्यक्तिके संबंधमें बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन्हें मैं कड़ना पसंद करूँगा।

राजकुमार वोल्कांस्कीके भी अपने यहां आनेकी मुझे याद है। वह माताजीके कोई मौसेरे या फुफेरे भाई थे। वह मेरा दुलार करना चाहते थे। उन्होंने मुझे अपने घुटने पर बिठा लिया, और जैसा कि बहुधा होता है, मुझे गोदीमें बिठाये-बिठाये घरके बड़े आदमियोंसे बात करनेमें मग्न रहे। मैं उनकी गोदीसे उठनेका प्रयत्न करता तो वह मुझे और कसकर थाम लेते। कुछ मिनटों तक यही चलता रहा। लेकिन इस तरह कैद हो जाने, आज्ञादी छिन जाने और ऊपरसे बल प्रयोगसे मैं इतना उकता उठता और मुझे इतना क्रोध आया कि मैं एकाएक ज़ोरसे उनके चंगुलसे छूटनेकी कोशिश करने, चिल्लाने और उन्हें मारने भी लगा।

यास्नाया पोल्यानासे दो मील दूर एक गाव ग्रुमंड है (उसका यह नाम मेरे दादाने रक्खा था, वह आवेंजलके, जहां पर ग्रुमंड नामका एक टापू था, गवर्नर रह चुके थे।) [ग्रुमंडके संबंधमें टॉल्स्टॉय लिखते हैं कि वहां पर पशुओंके लिए एक सुंदर बाड़ा और जब-तब रहनेके लिए एक बहुत सुंदर छोटा-सा मकान बना हुआ था। टॉल्स्टॉय परिवारके बच्चोंको यहां दिन बिताना बहुत अच्छा लगता था; क्योंकि यहांपर पानीका एक बड़ा सुंदर सोता और मल्लियोंसे भरी हुई एक छोटी-सी तलैया थी। वह आगे लिखते हैं :]

“लेकिन एक बार एक घटनासे, जिसके कारण हम सभी—कमसे-कम मैं और डिमित्री—करुणार्द्र हो रो पड़े और हमारा मारा आनंद जाता रहा। बात यह हुई कि हम सब अपनी गाड़ीमें बैठे घर लौट रहे थे। फीडर इवानोविचकी भूरे रंग, सुंदर आंखें और नरम घुघुराले बाल वाली शिकारी कुतिया बर्था, हमारी गाड़ीके आगे-पीछे भाग रही थी। जैसे ही हम ग्रुमंड बागसे आगे बढ़े, एक किसानके कुत्तेने उस पर हमला किया। बर्था गाड़ीकी ओर भागी। फीडर इवानोविच गाड़ी न रोक सके और वह उसके एक पंजे परसे निकल गई। जब हम घर आये और बर्था भी हमारे पीछे-पीछे तीन पैरोंसे लंगड़ाती-लंगड़ाती आई तो फीडर इवानोविच और हमारे खिदमतगार निकिता डिमित्रीने (जो एक शिकारी

भी था) उसका पैर देखकर कहा कि उसका पैर टूट गया है और अब यह आगे कभी शिकारके काम नहीं आ सकती । मैं ऊपर अपने छोटे कमरेमें इनकी बातें सुन रहा था । जिस समय फीडर इवानोविचने यह कहा कि 'अब यह किसी कामकी नहीं रही; इसका तो एकमात्र उपाय यही है कि इसे मार दिया जाये' तो मैं अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सका ।

बेचागी कुतिया कष्टमें थी, बीमार थी और इसके लिये उसे मौतके घाट उतारा जा रहा था । मेरे मनमें यह भावना उठी कि नहीं, यह बात गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए । परंतु फीडर इवानोविचने जिस ढंगसे यह बात कही और निकिता डिमित्रीने जिस ढंगसे उसका समर्थन किया, उससे मालूम होता था कि वे अपना निर्णय पूरा करने पर तुले हुए हैं और जैसे कि कुज़मा* को काँडे लगानेके लिये ले जाते समय तथा

*इस घटनाके विषयमें टॉल्स्टॉय इस प्रकार लिखते हैं:—

हम सब बच्चे घूमकर अपने शिक्षक फीडर इवानोविचके साथ वापस लौट रहे थे । उसी समय खलिहानके पास हमें हमारा मोटा कोचवान एंड्रू मिला । उसके साथ हमारा सहायक कोचवान कुज़मा भी था, जिसकी आंखें भेड़-सी थीं और इसी कारण वह भेड़ा कुज़मा कहलाता था । कुज़मा बहुत उदास था । उसका विवाह हो चुका था और उसकी जवानी भी ढल चुकी थी । हममेंसे एकने एंड्रू से पूछा कि वह कहां जा रहा है । उसने शांतिसे उत्तर दिया कि वह कुज़माको खलिहान पर बोड़े लगानेके लिये ले जा रहा है । मुंह लटकाये हुए कुज़माकी मूर्ति और इन शब्दोंने मेरे मनमें जो भय पैदा कर दिया उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता । शामको मैंने यह बात अपनी बुआ दाशियाना ऐलेक्जेंड्रोवनासे कही । उन्हें शारीरिक दंड देनेसे बड़ी घृणा थी और जहां कहीं उनका बस चलता, वह कभी दासोंको या हमको शारीरिक दंड न देती थीं । मेरे कहने पर उनको बहुत बुरा लगा और उन्होंने कहा, "तूने उसे क्यों रोका नहीं ?" उनके इन शब्दोंसे मुझे और भी दुःख हुआ । . . . मैंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि हम ऐसे

टेमीआशावने जब बतलाया था कि किस प्रकार उमने अपने रसोइयाको व्रतके दिन मांस खाने पर फौजमें भेज दिया था, उस समय मैंने अनुभव किया था कि यह गलत था, परंतु अपनेसे बड़े लोगोंके प्रति आदरकी भावनाके कारण मुझे उनके हर निश्चयके सामने अपनी भावना पर विश्वास करनेकी हिम्मत नहीं पड़ी, वैसे ही इस बार भी नहीं पड़ी ।

मैं अपने बाल्यकालकी सभी सुखद स्मृतियोंका वर्णन नहीं करूंगा; क्योंकि उनका अंत नहीं है और दूसरे वे मुझे प्रिय और महत्वपूर्ण लगती हैं, पर मैं उन्हें अन्य लोगोंके सामने महत्वपूर्ण नहीं सिद्ध कर सकता ।

मैं अपने बाल्य-जीवनके एक आध्यात्मिक अनुभवके विषयमें कुछ कहूंगा । यह अनुभव मेरे बचपनमें मुझे अनेक बार हुआ और मैं समझता हूँ कि वह बादके बहुतसे अनुभवोंसे कहीं बढ़ कर है । वह इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह प्रेमका पहला अनुभव था, किसी व्यक्तिके प्रति-प्रेम नहीं, बल्कि प्रेमके प्रति प्रेम, ईश्वरके प्रति प्रेम—इस प्रेमका अनुभव बादके जीवनमें यदा-कदा हो होता था, लेकिन हांता अवश्य था, और शायद इस कारण होता था (इसके लिए ईश्वरका धन्यवाद है) कि उसका बीज बचपनमें ही बो गया था । इसका अनुभव इस प्रकार होता था । हम, विशेषकर मैं, डिमित्री और लड़कियां कुर्सियोंके नीचे यथा-संभव एक-दूसरेसे सटकर बैठ जाते । इन कुर्सियोंके चारों ओर शाल लपेट दिया जाता और ऊपर गद्दियां ढक दी जातीं । हम एक दूसरेसे बहते कि हम सब भाई-भाई हैं, और उस समय एक दूसरेके प्रति एक विचित्र प्रेम-भावका अनुभव करते । कभी यह प्रेम-भावना बढ़ कर लाड़-दुलार तक पहुंच जाती और हम एक-दूसरेको थपथपाने लगते या आलिंगन करते, पर ऐसा बहुत कम होता था और हम सब अनुभव करते थे कि ऐसा उचित नहीं है और अपनेको रोक लेते थे ।

मामलोंमें पड़ सकते हैं । पर वास्तवमें हम ऐसे मामलोंमें बोल सकते थे । परंतु अब तो बात हाथसे निकल चुकी थी और वह भयानक कांड किया जा चुका था ।

कभी-कभी हम उन कुर्सियोंके नीचे बैठे-बैठे ही बात-चीत किया करते थे कि हम किस-किससे कितना प्रेम करते हैं, सुखी और प्रसन्न जीवन बितानेके लिए किन-किन बातोंकी आवश्यकता है; हमें किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना और किस प्रकार सबके प्रति प्रेम-भाव रखना चाहिए।

मुझे याद है कि इसका आरंभ एक यात्राके खेलसे होता था। हम लोग कुर्सियों पर बैठ जाते और अन्य कुर्मियोंको खींचकर एक गाड़ी बनाते। हम सब लोग बैठकर यात्रीका खेल खेलते और फिर धर्म-भाईका खेल खेलने लगते। इसमें हमारे साथ और लोग भी शामिल हो जाते। यह खेल बहुत ही अच्छा था और ईश्वरको धन्यवाद है कि हम यह खेल खेलते थे। हम इसे खेल कहते थे, लेकिन वास्तवमें इसे छोड़कर मंसारकी प्रत्येक बात एक खेल ही है।

[जर्मन भाषामें टॉल्स्टॉयकी जीवनीके लेखक लीवेनफेल्डके यह पूछने पर कि यह कैसे हुआ कि आपको ज्ञानार्जनकी इतनी पिपासा थी, फिर भी आपने उपाधि लेनेसे पहले ही विश्वविद्यालय छोड़ दिया, टॉल्स्टॉय ने लिखा है :]

‘हां, मेरी ज्ञान-पिपासा ही मेरे यूनिवर्सिटी छोड़नेका कारण थी। कज्ञानमें हमारे शिक्षक जिन विषयों पर जो-जो व्याख्यान देते थे, वे मुझे ज़रा भी रोचक नहीं लगते थे। पहले तो मैंने एक सालतक पूर्वी भाषाओंका अध्ययन किया, परंतु उसमें मैंने बहुत थोड़ी प्रगति की। मैं हर एक चीज़में जी-ज्ञानसे लग पड़ता था और एक ही विषय पर एक साथ बहुतेरी पुस्तकें पढ़ डालता था। लेकिन एक साथ मैं एक ही विषयकी पुस्तकें पढ़ता था। जब मैं एक विषयको उठाता तो फिर उसको बीचमें छोड़ता न था और उसपर वे सब पुस्तकें पढ़ता था जो उस विषय पर प्रकाश डालती थीं। कज्ञानमें मेरा यही हाल था।’

[एक दूसरे अवसर पर टॉल्स्टॉयने कहा :]

विश्वविद्यालय छोड़नेके विशेषकर दो कारण थे। पहला तो यह कि मेरे भाई सर्जी अपनी पढ़ाई समाप्त कर चुके थे और उन्होंने विद्यालय छोड़

दिया था। दूसरे केथराइनकी 'नकाज़' और 'ऐस्प्रिट द लुईस' पर मैंने जो लिखा, उसने मेरे लिये मानसिक कार्यका एक नवीन क्षेत्र खोल दिया। विद्यालयके कामके कारण मुझे इसमें सहायता मिलनी तो दूर, मेरे काममें बाधा भी पड़ती थी।

मेरे भाई डिमित्री मुझसे एक साल बड़े थे। उनकी आग्वे बड़ी-बड़ी थीं और उनसे गंभोरता टपकती था। मुझे यह तो याद नहीं कि बचपनमें वह कैसे थे, लेकिन बादमें मैंने लोगोंके मुंहसे सुना कि वह बचपनमें बड़े सनकी और अस्थिर थे। यदि उनकी धाय उनकी साल-संभाल ठीक न करती तो वह इसपर उससे क्रोधित होते और चिल्लाते। मैंने यह भी सुना है कि माताजी उनसे बहुत परेशान थीं। वह आयुमें लगभग मेरे बराबर ही थे और हम दोनों साथ-साथ बहुत खेले। यद्यपि मैं उनसे इतना प्रेम नहीं करता था जितना सर्जिसे, न इतना आदर ही जितना कि मैं निकोलसका करता था, लेकिन फिर भी हम दोनोंमें मित्रभाव था, और मुझे याद नहीं कि हम दोनों कभी लड़े हों। हो सकता है कि हम कभी लड़े भी हों; लेकिन उस लड़ाईकी छाप हमारे दिलोंमें बिल्कुल न रही। मैं उनसे सरल और स्वाभाविक तौरपर प्रेम करता था, जिसका (प्रेमका) न तो मुझे ज्ञान था, और न जिसकी अब स्मृति ही शेष है। मैं यह समझता हूँ, और विशेषकर बचपनका यह मेरा अपना अनुभव भी है कि बाल्यकालमें दूसरोंके प्रति प्रेम आत्माकी एक स्वाभाविक स्थिति है, या दूसरे शब्दोंमें एक-दूसरेके बीच एक स्वाभाविक संबंध है, और जिस समय मनुष्यकी ऐसी स्थिति होती है उस समय उसे उस प्रेमका ज्ञान नहीं रहता। उसका ज्ञान तो तभी होता है जब मनुष्य प्रेम नहीं करता; 'प्रेम नहीं करता' नहीं, बल्कि जब वह किसीसे डरने लगता है। (मैं भिखारियोंसे या वोल्कोव्स्की से, जो मुझे चुटकी लिया करता था, इसी प्रकार डरता था, लेकिन मैं समझता हूँ कि इनके अतिरिक्त मैं किसीसे नहीं डरता था), अथवा जब कोई आदमी किसी एक आदमीसे ही विशेष प्रेम करने लगता है, जिस प्रकार कि मैं अपनी बुध्या टाशियाना

ऐलेक्ज़ेंड्रोव्नासे या अपने भाई सर्जी और निकोलससे, वेसिली, धाय ईसेव्ना और पेशेकासे प्रेम करता था ।

डिमिट्रीके बचपनके संबंधमें सिवाय इसके कि वह बड़े प्रसन्न-चित्त रहते थे, मुझे कुछ भी याद नहीं । सन् १८४०में, जब उनकी आयु १३ वर्षकी थी, हम दोनों कज़ान विश्वविद्यालयमें गये, और उस समय मुझे उनकी विशेषताएं पहले-पहल मालूम हुईं और उनका मुझपर प्रभाव पड़ा । उसके पहले मैं उनके विषयमें केवल इतना जानता था कि वह उस प्रकार प्रेममें नहीं पड़ते जिस तरह मैं और सर्जी; और न नाच-रंग और सैनिक प्रदर्शन ही पसंद करते थे । वह पढ़ते बहुत थे । पॉलोस्की नामके एक अंडर-ग्रेजुएट शिक्षक हमें पढ़ाया करते थे । हम भाइयोंके विषयमें उन्होंने अपनी राय यों प्रकट की थी : 'सर्जी पढ़ना चाहता है और पढ़ भी सकता है; डिमिट्री चाहता तो है, लेकिन पढ़ नहीं सकता (लेकिन यह ठीक नहीं था) और लियो टॉल्स्टॉय न तो चाहता ही है और न पढ़ सकता है (हां, मेरे विषयमें यह बिल्कुल ठीक था) ।'

इस प्रकार डिमिट्रीके विषयमें मेरी स्मृति कज़ानसे आरंभ होती है । वहां हर बातमें सर्जीका अनुकरण करते-करते मैं विगड़ने लगा । उस समय और उसके पहले भी मुझे अपने बनाव-सिंगारकी चिंता रहने लगी । मैं चिकना-चुपड़ा दिखाई पड़नेका प्रयत्न करने लगा । डिमिट्रीको ये बातें छू भी न गई थीं । मेरा तो खयाल है कि वह जवानीके अवगुणोंसे सदा दूर रहे । वह सदा गंभीर, विचारवान, शुद्ध और दृढ़ रहते थे, यद्यपि उन्हें क्रोध जल्दी आजाता था । वे जो काम करते थे उसे सारी शक्ति लगाकर करते थे । जब उन्होंने वह पीतलकी जंजीर निगल ली थी, उस समय भी जहां-तक मुझे याद है, एक बार जब मैंने एक बेरकी गुठली, जो मुझे 'बुआ'ने दी थी, निगल ली थी तो मुझे कितना डर लगा था, और मैंने किस गंभीरतासे वह दुर्घटना अपनी मातासे कही थी, मानों मैं मर ही रहा होऊं ।

* लेकिन दूसरे स्थानपर टॉल्स्टॉयने इससे बिल्कुल उल्टी बात कही है और निकोलसको भी लपेट लिया है ।—सं०

एक बार हम सब अच्चे एक पहाड़ी परसे बर्फ पर फिसलनेवाली लकड़ी-की चट्टियों पर फिसल रहे थे। इतनेमें एक आदमी स्लेज-गाड़ीमें बैठा हुआ सड़क-सड़क जानेके बजाय पहाड़ी पर चढ़ आया। शायद सर्जों और एक ग्रामीण बालक उस समय फिसलकर नीचे आ रहे थे। वे अपनेको गोक न सके और घांड़ेके पैरोंके पास जाकर गिर पड़े। उन्हें चोट नहीं लगी, और स्लेज-गाड़ी पहाड़ीकी ओर चली गई। हम सब तो यही देखनेमें दत्तचित्त थे कि किस प्रकार वे घांड़ेके पैरोंके नीचेसे बचकर निकले, किस प्रकार घोड़ा भड़ककर एक ओरको हटा, आदि आदि। लेकिन डिम्ट्री, जिनकी आयु उस समय केवल ६ वर्षकी थी, उठकर सांघे उस आदमीके पास गये और उसे फटकारने लगे। जब उन्होंने उनसे यह कहा कि ऐसी जगह गाड़ी चलाने पर, जहा कि कोई सड़क नहीं है तुम अस्तबलमें भेजे जाने योग्य हो, जिसका उस समय यह अर्थ था कि तुम्हारी पिटाई कोडांसे होनी चाहिए, तो मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ और कुछ बुरा भी लगा।

उनकी विशेषताएं तो पहले-पहल कज्ञानमें ही मालूम हुईं। वह जी लगाकर बहुत अच्छी तरह पढ़ते और बड़ी सुगमतासे कविता भी कर लेते थे। उन्होंने शिलरकी कविता 'दर जंगलिंग एम वाशे'का बड़ा सुंदर अनुवाद किया था। लेकिन कविताके धधेमें उन्होंने कभी अपनेको नहीं लगाया। एक दिन वह बहुत ज्यादा मज़ाक करने लगे। इससे लड़कियोंका बड़ा मनोरंजन हुआ। इसपर मुझे उनसे कुछ ईर्ष्या हुई। मैंने सोचा कि लड़कियां इसीलिए प्रसन्न हैं कि वह सदा गंभीर रहते हैं, और उसी तरह उनकी नकलमें गंभीर बननेकी मेरी भी इच्छा हुई। मेरी बुआ (पेला-गेया इलीनिशना)को सनक हुई कि हमारी सेवाके लिए एक-एक दास-बालक रखें, जो बादमें हमारा विश्वासपात्र खिदमतगार हो सके। डिम्ट्रीके लिए उन्होंने एक दास वेनयूशा दिया जो अभी तक जीवित है। डिम्ट्री उसके साथ बड़ा बुरा बर्ताव करते और मेरा खयाल है कि उसे पीटते तक थे। 'खयाल है', मैं इसलिए कहता हूँ कि मैंने उन्हें कभी मारते पीटते तो

देखा नहीं, लेकिन मुझे याद है कि एक दिन वह वेनयूशाके सामन उसके प्रति किये गये व्यवहारके लिए पश्चात्ताप कर रहे थे और उससे नम्र शब्दोंमें क्षमा मांग रहे थे ।

मुझे यह तो नहीं मालूम कि किस प्रकार या किसके प्रभावसे वह धार्मिक जीवनकी ओर खिंचे, लेकिन उनका धार्मिक जीवन विद्यालयमें प्रविष्ट होनके पहले सालमें ही आरंभ हो गया । धार्मिक जीवनकी ओर प्रवृत्ति होनेके कारण स्वभावतः वह चर्चकी ओर झुके और अपने स्वाभाविक अध्यवसायके साथ धार्मिक-साहित्यका अध्ययन करने लगे । वह बड़ा सादा भोजन करते, गिर्जमें सभी प्रार्थनाओं और उपदेशोंके समय जाते । वह अधिकाधिक कठोर जीवन चिताने लगे ।

डिमिट्रीमें एक असाधारण गुण था और मुझे विश्वास है कि वह गुण मेरी माता और मेरे बड़े भाई निकोलसमें भी था, लेकिन मुझमें बिल्कुल नहीं था । वे इस बातसे पूर्णतया उदासीन रहते कि दूसरे लोग मेरे बारेमें क्या खयाल करते हैं । बुढ़ापे तक में मुझे चिंता रहती है कि दूसरे लोग मेरे बारेमें क्या खयाल करते हैं, लेकिन डिमिट्री इस चिंतासे बिल्कुल मुक्त थे । जब कोई आदमी किसीकी प्रशंसा करता है तो अनिच्छा होते हुए भी वह मुस्करा देता है । लेकिन मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उनके मुखपर इस तरहकी मुस्कराहट देखी हो । मुझे तो उनकी बड़ी-बड़ी शांत, गंभीर और विचारशील आंखें ही याद हैं । केवल कज्ञान विद्यालयमें रहनेके समय ही हमने उनकी ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया और वह भी इसलिए कि उस समयतक हम बाहरी बनाव-संवारपर ज़्यादा जोर देने लगे थे और वह मैले-कुचैले और गंदे रहते थे और इस कारण हम सदा उनकी निंदा किया करते थे । वह न तो नाच देखने जाते और न नाच सीखना ही चाहते थे । एक विद्यार्थीके नाते वह अन्य विद्यार्थियोंकी गोष्ठीमें भी नहीं जाते थे । केवल एक कोट पहनते और गलेमें पतला-सा तंग रूमाल बांधते थे । युवावस्थासे ही उनको मुंह बनानेकी आदत पड़ गई थी । वह हर समय अपना

सिर धुमाते रहते थे मानां तंग रूमालसे अपना पिंड छुड़ानेकी कोशिश कर रहे हों ।

जिस समय उन्होंने उपासना (कम्प्युनियन) के निमित्त पहला उपवास किया, उस समय उनकी विशेषताएं पहली बार मालूम हुईं । उन्होंने यह उपवास विश्वविद्यालयके प्रैशनेबुल गिर्जेमें न करके जेलके गिर्जेमें किया । उस समय हम जेलके ठीक सामने गोडालोवके मकानमें रहते थे । इस गिर्जेमें एक बड़े धार्मिक और कट्टर पादरी थे । यह एक असाधारण-घात थी; क्योंकि उस समय पादरी न तो धर्मिष्ठ होते थे और न धर्माचरणके नियमोंका कड़ाईके साथ पालन करते थे । यह पादरी महोदय धार्मिक सत्ताहमें इंजील तथा ईसामसीह व उनके अनुयायियोंके ग्रंथोंका — जिनको पढ़नेका यद्यपि शास्त्रोंमें विधान है, परंतु लोग जिन सब ग्रंथोंको कम ही पढ़ते थे — आग्रोपात पाठ करते थे । इसी कारण इस गिर्जेके उपदेश बड़ी देरमें समाप्त हुआ करते थे । डिमिटी इन सब कथाओं और उपदेशोंको खड़े होकर सुना करते थे । उन्होंने पादरीसे भी जान-पहचान करला था । गिर्जाघर इस प्रकार बना हुआ था कि गिर्जाघर और उस स्थानके बीचमें जहां कैदी खड़े होकर उपदेश सुना करते थे, एक शीशेकी दीवार थी और उसमें एक छोटा-सा दरवाजा था । एक बार एक कैदीने उस दरवाजेके भीतरसे एक छोटे पादरीको कुछ देना चाहा । वह या तो मोमबत्ती थी या उसके लिए कुछ पैसे थे । कोई यह काम करनेके लिए तैयार न हुआ, लेकिन डिमिटीने अपनी स्वाभाविक गंभीर मुद्राके साथ उसे उठा लिया और छोटे पादरीको दे दिया । यह काम ठीक नहीं था और इसके लिए उन्हें बुरा-भला भी कहा गया; लेकिन चूंकि वह समझते थे कि यह काम किया जाना चाहिए, अतः वह दूसरे अवसरोंपर भी यह काम करते रहे ।

जब हम दूसरे मकानमें चले गये तबकी एक घटना मुझे याद है । हमारे ऊपरके कमरे दो हिस्सोंमें बंटे हुए थे । एक भागमें डिमिटी रहते थे और दूसरेमें सर्जि और मैं । बड़े आदमियोंके समान सर्जिओ और मुझे अपनी-अपनी मेजोंपर आभूषण तथा अन्य चीजें, जो हमें भेंटमें

मिलती थीं, सजाकर रखनेका शौक था। लेकिन डिमिट्रीके पास ऐसी कोई चीज़ नहीं थी। उन्होंने पिताजीसे केवल एक ही वस्तु ली थी और वह उनका रंग-बिरंगे पत्थरोंका संग्रह था। उन्होंने उनको सजाकर और उनपर लेबिल लगाकर एक शीशेके ढक्कनवाले बक्समें रख छोड़ा था। चूंकि हम सब भाई और हमारी बुआ डिमिट्रीकी इन निम्न कोटिकी रुचियों और उनके निम्न श्रेणीके परिचितोंके कारण उन्हें कुछ घृणाकी दृष्टिसे देखती थीं, अतः हमारे दंभी मित्र भी उनके प्रति यही रव्य रखते थे। उनमेंसे एक 'ऐस' था। वह एक इंजीनियर था और बड़ी क्षुद्र प्रकृतिका था। उसे हमने मित्र नहीं बनाया था, मगर वह स्वयं हमारे पीछे पड़ा रहा और हमारा मित्र बन गया था। एक दिन उसने डिमिट्रीके कमरेसे निकलते हुए, उनके रंग-बिरंगे पत्थरोंके संग्रहको देखकर उनसे एक प्रश्न कर दिया। 'ऐस' का व्यवहार असहानुभूतिपूर्ण और अस्वाभाविक था। डिमिट्रीने उसके प्रश्नका अनिच्छासे उत्तर दिया। इसपर 'ऐस'ने उस बक्सको सरकाकर जोरसे हिला दिया। डिमिट्रीने कहा—'उसे छोड़ दो।' 'ऐस'ने उनकी बात न मानी और उनके साथ मज़ाक किया। और यदि मुझे ठीकसे याद है तो उसने उन्हें 'नूह'* पुकारा था। डिमिट्रीको इसपर भीषण क्रोध आया और उन्होंने 'ऐस'के मुंह पर अपने भारी हाथसे एक थप्पड़ जोरसे मारा। 'ऐस' भागा और डिमिट्री उसके पीछे-पीछे भागे। दोनों भागकर हमारे कमरेकी तरफ आये तो हमने 'ऐस'को अंदर लेकर दरवाज़ा बंद कर दिया। इस पर डिमिट्रीने कहा कि अच्छा, जब 'ऐस' मेरे कमरेसे होकर वापस जायेगा तब मैं उसे पीटूंगा। सर्जी और मुझे याद पड़ता है, शायद शुवाल्लोव डिमिट्रीको मनानेके लिए भेजे गये कि वह 'ऐस'को चला जाने दें, परंतु वह भाड़ू लेकर बैठ गये और बोले कि मैं उसे अच्छी तरह पीटूंगा। मुझे नहीं मालूम कि यदि 'ऐस' उनके कमरेमेंसे जाता तो वह क्या करते, लेकिन उसने हमसे किसी दूसरे रास्तेसे निकालनेकी प्रार्थना की और हमने उसे ऊपर छतवाले कमरेसे किसी प्रकार रंग-रंगकर निकाला।

* 'नूह' संबोधनका उल्लेख 'मेरी मुक्तिकी कहानी'के पृ० ४ पर है।

टॉल्स्टॉयने एक बार एक सिपाहीकी पैरवोको थी जिस पर अपने अफसर पर हाथ उठानेके अभियोगमें फाँसीकी सजा देनेके लिए मुकदमा चल रहा था। टॉल्स्टॉयकी जीवनीके लेखक वीरूकोवने टॉल्स्टॉयसे इस घटनाका विस्तृत वर्णन मांगा। उस पर टॉल्स्टॉयने उन्हें निम्न पत्र लिखा :

प्रिय मित्र पावेल इवानोविच,

तुम्हारी इच्छा पूरी करने और तुमने अपनी पुस्तकमें जिस सिपाहीकी पैरवी करनेका उल्लेख किया है उसके संबंधमें मेरे क्या विचार थे इस पर पूरा प्रकाश डालनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता है। भाग्यके उलट-फेरों, संपत्तिका विनाश या प्राप्ति, साहित्यिक-जगतमें सफलता या असफलता, अपने प्रिय-से-प्रिय संबंधियोंकी मृत्यु जैसी अधिक महत्वपूर्ण घटनाओंसे भी अधिक उस घटनाका मेरे जीवन पर प्रभाव पड़ा है।

मैं पहले तो यह बातलाऊंगा कि यह सब कैसे हुआ, और उसके बाद यह बातलाऊंगा कि उस घटनाके समय और अब उसकी स्मृतिसे मेरे मनमें क्या-क्या भावनाएं और विचार पैदा हुए हैं।

मुझे यह याद नहीं कि उस समय मैं किस खास काममें लगा हुआ था। शायद आप यह बात मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते होंगे। मुझे तो बस इतना ही याद है कि उस समय मैं एक शात, संतुष्ट और आत्मा-भिमानसे पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। सन् १८६६की गर्मियोंमें हमारे पास सैनिक पाठशालाका एक विद्यार्थी ग्रीशा कोलोकोल्टसेव, जो बेहरोंको जानता था और मेरी पत्नीका परिचित भी था, अचानक हमारे पास आया। मालूम हुआ कि वह सेनाकी एक टुकड़ीमें, जो हमारे पास ही पड़ाव डाले हुए थी, नौकर था। वह प्रसन्न-चित्त और अच्छे स्वभावका लड़का था और उस समय अपने छोटेसे कज्जाक घोड़े पर उछल-उछलकर दौड़नेमें ही उसका समय बीतता था। अक्सर वह अपने घोड़े पर सवार होकर हमारे पास भी आया करता था।

उसके द्वारा हमारा उसकी टुकड़ीके सेनापति जनरल यू...और ए.

एम. स्टायूलेविचसे परिचय हो गया । स्टायूलेविच या तो पदमें घटा दिया गया था या किसी राजनीतिक मामलेके कारण सैनिककी हैसियतमें काम करनेको भेजा गया था (मुझे ठीक कारण याद नहीं है) । वह प्रसिद्ध संपादक स्टायूलेविचका भाई था । स्टायूलेविचकी जवानी चीत चुकी थी । जब हमारा परिचय हुआ उसी वक्तके करीब उसकी तरक्की हुई थी, और वह ध्वजावाहक बना दिया गया । वह अपने पुराने साथी यू...की सेनामें, जोकि अब उसका कर्नल था, आ गया था । यू...और स्टायूलेविच दोनों अक्सर घोड़ों पर चढ़कर हमारे पास आया करते थे । कर्नल यू...दृष्ट-पुष्ट, लाल मुख चेहरे और अच्छे स्वभाववाला कुछ उस प्रकारका अविवाहित व्यक्ति था जैसे कि साधारणतया होते हैं । उच्चपद और ऊंची सामाजिक स्थितिने उसकी मानवी-प्रवृत्तियोंको दबा दिया था । अपने पद और मानको बनाये रखना उसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य था । मानवी दृष्टिसे यह कहना कठिन है कि ऐसा आदमी विवेकी या सज्जन है, क्योंकि ऐसे मनुष्यके विषयमें कोई यह नहीं जानता कि यदि वह एक कर्नल या प्रोफेसर या मंत्री, या न्यायाधीश या एक पत्रकार न रहकर एक साधारण आदमी रह जाये तो कैसा होगा ? यही हाल केवल यू...का था । वह एक सेनाकी टुकड़ीका कार्यवाहक सेनापति था, लेकिन वह किस प्रकारका मनुष्य था, यह कहना असंभव था । मेरा तो यह खयाल है कि वह अपने-आपको भी न जानता होगा और न इसमें उसकी दिलचस्पी ही थी । स्टायूलेविच इसके विपरीत था । यद्यपि अनेक प्रकारसे, विशेषकर उसके दुर्भाग्य और अपमानोंसे, जो उस-जैसे महत्वाकांक्षी और आत्मभिमानी मनुष्यको बड़े दुःखके साथ सहने पड़े, उसका विनाश हो चुका था, परंतु वह फिर भी जीवनसे भरा हुआ मनुष्य था । कुछ दिनों बाद वह दिखाई ही नहीं पड़ा । जब उनकी सेना किसी दूसरे स्थान पर चली गई उस समय मैंने सुना कि उसने बिना किसी व्यक्तिगत कारणके विचित्र रीतिसे आत्महत्या कर ली । एक दिन सबेरे उसने एक बहुत भारी फौजी ओवरकोट पहना और उसे

पहनकर नदीमें उतर गया । चूँकि वह तैरना नहीं जानता था, अतः नदीमें डूबकर मर गया ।

मुझे याद नहीं कि कोलोकोल्टसेव या स्ट्रस्यूलेविच दोनोंमेंसे किसने गर्मीके दिनोंमें एक दिन सवेरे आकर एक घटना सुनाई जो सेनामें एक असाधारण और भयानक बात थी । एक सिपाहीने एक कंपनी कमांडरको मारा था । स्ट्रस्यूलेविच इस विषय पर ज़रा जोरसे बोल रहा था । उस सिपाहीके भाग्यके फैसले (अर्थात् मृत्युदंड) के प्रति उसके हृदयमें सहानुभूति थी । उसने मुझे फौजी पंचायतके सामने उस सिपाहीकी वकालत करनेकी सिफारिश की ।

यहापर मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मुझे इस बातसे कि एक आदमी जज बनकर किसीको मौतकी भज़ा दे और अन्य आदमी (अर्थात् अधिक) उसे मौतके घाट उतार केवल एक धक्का ही नहीं लगता था, बल्कि सब कुछ असंभव और कृत्रिम लगता था । ऐसे भीषण कृत्यके संबंधमें यह जानते हुए भी कि वह पहले हो चुका है, और अब भी प्रतिदिन हो रहा है, उस पर विश्वास नहीं होता था । मृत्युदंड दिये जाते हैं, यह मुझे मालूम है, फिर भी वे मुझे एक असंभाव्य कार्य मालूम पड़ते रहे हैं ।

यह बात मेरी समझमें आती है कि क्षणिक आवेशमें घृणा और प्रतिहिंसाके वशीभूत हो अथवा मानवी भावनाओंका नाश होनेके कारण एक आदमी अपनी या अपने मित्रकी आत्मरक्षाके लिए किसीको मार सकता है, अथवा युद्धके समय देश-व्यक्तिके नशेमें, जिस समय मनुष्य मरने-मारनेके लिए कटिबद्ध होता है, उस समय वह एक साथ सहस्रों आदमियोंके संहारमें भाग ले सकता है । लेकिन यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि आदमी अपने ऊपर नियंत्रण रखते हुए, शांतिसे और जान-बूझकर अपने किसी भाईको मारनेकी आवश्यकता स्वीकार कर सकता है और दूसरोंको मानव-स्वभावके सर्वथा विपरीत यह कार्य करनेकी आज्ञा दे सकता है । यह बात मेरी समझमें उस समय भी नहीं आई थी, जब कि मैं सन् १८६६में अहंकारी जीवन व्यतीत कर रहा था । इसीलिए मैंने

आशाभरे हृदयसे उम सिपाहीकी वकालत करनेका विचित्र निश्चय किया ।

मुझे आजेरकी गांवमें उस स्थान पर जानेकी अच्छी तरह याद है, जहां वह कैदी-सिपाही रक्खा गया था, (मुझे यह याद नहीं कि वह कोई खास मकान था या वही मकान था जियमें वह कांड हुआ था) । इंटोंकी एक नीची छतवाले भोपड़ेमें घुसने पर मैंने एक टिगनेसे आदमीको देखा । वह लंबा होनेके बजाय छुष्ट-पुष्ट अधिक था, जो कि सिपाहियोंके लिए एक असाधारण बात थी । उसकी मुखाकृति बड़ी सरल, अपरिवर्तन-शील और शांत थी । मुझे यह याद नहीं कि उस समय मेरे साथ दूसरा आदमी कौन था ? परंतु जहांतक मुझे याद है वह कोलोकोल्टसेव था । जैसे ही हम घुसे वह आदमी फौजी ढंगसे उठ खड़ा हुआ । मैंने उससे कहा कि मैं तुम्हारा बकौल होना चाहता हूं; अतः तुम मुझे ठीक-ठीक बता दो कि वह घटना किम प्रकार घटी । उसने बहुत थोड़ी बातें बताईं और मेरे प्रत्येक प्रश्नके उत्तरमें बड़ी उदासीनता और अनिच्छासे यही उत्तर दिया—‘हां, यही हुआ था ।’ उसके उत्तरोंसे तो यही निष्कर्ष निकलता था कि वह काम करनेमें सुस्त था और उसका कप्तान बड़ी कड़ाईसे काम लेता था । उसने कहा—‘उसने मुझसे बड़ा सब्त काम लिया’ ।

जैसा कि मैंने समझा उसके यह कांड कर बैठनेका कारण यही था कि कुछ महीनेसे कप्तानने,—जो बाहरसे देखनेमें बड़ा शांत था—अपने उकता देनेवाले एकरस स्वरमें एक ही काम को, जो उस आदमीने (वह दफ्तरका अर्दली था) अपनी समझसे ठीक-ठीक किया था दुबारा करनेकी आज्ञाएं दे देकर और उन आज्ञाओंका बिना ननु-नन्के पालन कराकर, इतना उत्तेजित कर दिया कि वह सबकी सारी सीमाओंको लांघ गया, और उसकी हालत ‘मरता क्या न करता’ जैसी हो गई । मेरा खयाल है कि उन दोनोंमें परस्पर एक-दूसरेके प्रति कुछ घृणाके भाव भी थे । जैसा कि बहुधा होता है, कंपनी-कमांडर उस अर्दलीके प्रति विरोध-भावना रखने लगा था । उसे यह संदेह हुआ कि यह अर्दली मेरे पोल होनेके

कारण मुझसे घृणा करता है। इससे उसकी यह विरोध-भावना और बढ़ गई। उसने अफसर होनेका लाभ उठाकर उसके हर कामसे असंतोष प्रगट करना और सब कामको, जिसे वह आदमी समझता था कि उसने ठीक किया है, दुबारा करनेके लिए उसे बाध्य करना आरंभ किया। अदनी भी उसके पोल हाने, उसकी योग्यता पर विश्वास न करने और सबसे अधिक उसके ऊंचा अफसर होनेके कारण, जिससे वह उसकी कोई शिकायत न कर सकता था, उससे घृणा करता था। अपनी घृणा व्यक्त करनेका कर्मी अवसर न मिलनेके कारण वह आग भीतर-ही-भीतर सुलगती रही और प्रत्येक डाट-फटकारके साथ बढ़ती गई। अपनी सीमा पर पहुंचकर वह आग उस रूपमें भड़क उठी, जिसका कि उसने स्वप्नमें भी विचार नहीं किया था। तुमने जो मेरी जीवनीमें यह लिखा है कि उस आदमीकी क्रोधाग्नि कतानके यह कहनेसे कि वह कोड़ोंसे उसकी ग्वाल उधड़वा देगा, भभक उठी, गलत है। कतानने उसे केवल एक कागज वापस दिया और उससे उसे ठीक करने और दुबारा लिखनेके लिए कहा था।

पंच शीघ्र ही नियत कर दिये गये। सरपंच कर्नल यू..... थे तथा कोलोकोल्टसेव तथा स्ट्यासयूलेविच सहायक पंच थे। कैदी पंचोंके सामने लाया गया। अदालती शिष्टाचारके बाद, जिसके संबंधमें मुझे कुछ याद नहीं रह गया है, मैंने अपना भाषण पढ़ा, जो मुझे अब केवल विचित्र ही नहीं लगता है, बल्कि लजासे भर देता है। पंचोंने भी केवल शिष्टाचारके नाते वे सब निरर्थक बातें, जो मैंने बहुतसे कानूनी ग्रंथोंका हवाला देते, कहीं—मुनीं और सब कुछ मुननेके बाद आपसमें सलाह करनेके लिये चले गये। उस पारस्परिक विचार-विनिमयके समय, जैसा कि मुझे बादमें मालूम हुआ, केवल स्ट्यासयूलेविच ही उस मूर्खतापूर्ण कानूनी नजीरसे सहमत था जिसके आधार पर मैंने कहा था कि कैदीको इसलिए छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह अपने कामके लिए उत्तरदायी नहीं है। सदाशय कोलोकोल्टसेव यद्यपि वही करना चाहता था जो मैं चाहता था, परंतु अंतमें वह कर्नल यू.....के सामने झुक गया और उसके मतने

मामलेका फैसला कर दिया ! सिपाहीको गोलीसे उड़ाकर मारनेकी सज़ा सुना दी गई । मुकदमा समाप्त होनेके बाद शीघ्र ही मैंने एक संभ्रांत महिला एलेक्जेंड्रा एंड्रोव्ना टॉल्स्टयाको, जो मेरी घनिष्ठ मित्र थीं और जिनकी राज-दरवारमें पहुंच थी, लिखा कि वह सम्राट एलेक्जेंडर द्वितीयसे शिबूनिनको क्षमा दिला दे । मैंने उन्हें उसे लिखा तो सही, लेकिन चित्त अस्थिर होनेके कारण उस रेजीमेंटका नाम देना भूल गया, जिसमें शिबूनिन था । उसने युद्ध-मंत्री मिल्यूटिनको भी लिखा; परंतु उसने भी यही कहा कि उस रेजीमेंटका नाम दिये बिना सम्राटके सामने आवेदन-पत्र पेश करना असंभव है । उसने मुझे लिखा । मैंने जल्दी-से-जल्दी उत्तर दिया लेकिन रेजीमेंटके कमानने भी जल्दी की । अतः जिस समयतक सम्राटके सामने पेश करनेके लिए आवेदन-पत्र तैयार हुआ उस समयतक उस सिपाहीको गोलीसे उड़ा दिया गया ! '.....'

उस सिपाहीकी सफाईमें मैंने जो उल्टा-सीधा, मूर्खतापूर्ण भाषण दिया था और जिसे अब तुमने प्रकाशित किया है, उसे दुबारा पढ़कर मेरी आत्मा विद्रोह करती है । दैवी और मानवी कानूनोंके खुले तौरपर तोड़े जानेका उल्लेख करते हुए, जो मनुष्य अपने भाइयोंके विरुद्ध कर रहा है, मैंने जो कुछ किया था वह यही था कि कुछ मूर्खतापूर्ण शब्द उद्धृत कर दिये थे, जिन्हें किसी मनुष्यने लिखकर कानूनका रूप दे दिया है ।

वास्तवमें अब मैं उस उल्टी-सीधी और मूर्खतापूर्ण वकालतपर लज्जित हूँ । अगर एक आदमी यह जानता है कि ये आदमी क्या करनेके लिए इकट्ठा हुए हैं—वे अपनी फौजी-वर्दीमें मेज़के तीन तरफ बैठे और सोच रहे हैं कि कुछ शब्दोंके कारण, जो कुछ पुस्तकोंमें लिखे हुए हैं और अनेक शीर्षों और उपशीर्षोंके साथ कागज पर छपे हुए हैं, वे अनंत ईश्वरीय कानूनको, जो यद्यपि किसी पुस्तकमें छपा हुआ नहीं है, परंतु प्रत्येक मानवके हृदयपर अंकित है, तोड़ सकते हैं, तब उनके सामने उन मूर्खतापूर्ण और झूठे शब्दों द्वारा (जिन्हें हम कानून कहते हैं) चतुरतासे सिद्ध करनेकी कोई ज़रूरत नहीं कि किसी आदमीको मौतसे मुक्त कर

देना संभव है। उन्हें तो सिर्फ यह याद करानेकी ज़रूरत है कि वे कौन हैं और क्या कर रहे हैं ? हर एक आदमी यह जानता है कि प्रत्येक मनुष्यका जीवन पवित्र है; और किसी दूसरेको किसीका प्राण लेनेका कोई अधिकार नहीं है। इसको सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसे किसी प्रमाणद्वारा सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। हां, एक बात आवश्यक, संभव और ठीक है। वह यह कि आदमियों—जजां—को उस जड़तासे मुक्त करना जिसके कारण उनमें यह पाशविक और अमानुषिक विचार आता है। यह सिद्ध करना कि एक आदमीको दूसरेको मौतकी सज़ा नहीं देनी चाहिए, यही सिद्ध करनेके बराबर है कि एक आदमीको वह काम नहीं करना चाहिए, जो उसकी प्रकृतिके प्रतिकूल और अंतरात्माके विरुद्ध हो : अर्थात् उसे जाड़ेमें नंगा नहीं फिरना चाहिए, नाबदानकी वस्तुएं नहीं खानी चाहिए और चारों हाथ-पांव नहीं चलाना चाहिए। यह मनुष्यकी प्रकृति और आत्माके विरुद्ध है, यह बात आजसे वर्षों पूर्व उस स्त्रीकी कहानी द्वारा, जिसे पत्थरसे मार-मारकर मार डाला जाने वाला था, सिद्ध हो चुकी है।

क्या यह संभव है कि मनुष्य (कर्नल यू. और मिशा कोलोकोल्ट-सेव जैसे) अब इतने न्याय-प्रिय हो गये हैं कि उन्हें पहला पत्थर फेंकने (दूसरोको अपराधी करार देने) में कोई डर नहीं है।

उस समय मैं यह बात नहीं समझता था। जब मैंने अपनी चचेरी बहिन टॉल्स्टॉयाके द्वारा शिबूनिनको क्षमा दिलानेका आवेदन-पत्र दिया, उस समय भी यह बात नहीं समझता था। उस समय मैं कितने भ्रममें था कि शिबूनिनके साथ जो कुछ हुआ वह एक साधारण-सी बात है। अपने उस भ्रम पर मुझे अब आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता।

उस समय मैं ये सारी बातें नहीं समझता था। उस समय तो मेरे मनमें एक अस्पष्ट-सी भावना थी कि जो कुछ हो गया है वह नहीं होना चाहिए; और यह घटना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि इसका

मानव-जातिकी अन्य भूलों और पीड़ाओंसे गहरा संबंध है, और यह सबके मूल (जड़) में है।

उस समय भी मेरे मनमें एक अस्पष्ट भावना थी कि मौतकी सज़ा—जान-बूझकर, सोच विचारकर और पहलेसे निश्चय करके की गई हत्या—वह कृत्य है जो कि ईसाई धर्मके (जिसके कि हम अनुयायी हैं) खिलाफ है। वह विवेकशील जीवन और नैतिकता भंग करनेवाली चीज है। क्योंकि अगर एक आदमी या कुछ आदमी मिलकर यह निश्चय करें कि एक आदमी या किसी दलका बंध करना आवश्यक है तो दूसरे आदमी या दलको किसीकी हत्या करनेसे कौन रोक सकता है? और क्या उन आदमियोंका जीवन विवेकशील और नैतिक हो सकता है, जो अपनी इच्छानुसार एक दूसरेको मार सकें?

मैं उस समय भी यह महसूस करता था कि धर्म और विज्ञान मौतकी सज़ाके लिए जो युक्तियां देते हैं, इनके द्वारा हिंसा करनेकी न्यायोचितता सिद्ध होनेके स्थान पर उल्टे धर्म और विज्ञानका खोखलापन ही सिद्ध होता है। मुझे यह अनुभव पहली बार पेरिसमें हुआ, जब मैंने एक फ्रांसीसीका दृश्य दूरसे देखा।* परंतु जब मैंने इस मामलेमें भाग लिया तो मेरे मनमें इस संबंधमें जोरदार भावनाएं उठीं। फिर भी मुझे अपने ऊपर विश्वास करनेमें और संसारके निर्णयसे अपनेको विलग करनेमें डर लगता था। बहुत दिनोंके बाद मुझे अपनी धारणाओंमें विश्वास पैदा हुआ और उन दो महाभयानक जालोंको अस्वीकार कर सका जिनकी मुट्टीमें सारा संसार है, और जो सब पीड़ाएं और उत्पीड़न पैदा करते हैं, जिनसे मानव-जाति कष्ट पा रही है। ये दोनों जाल चर्च और विज्ञान हैं।

बहुत दिनों बाद जब मैंने उन युक्तियोंका ध्यानसे अध्ययन करना आरंभ किया, जो 'चर्च' (धर्म-संस्था) और विज्ञान आजकलके राजतंत्रके समर्थनमें दिया करते हैं, तब मैं उन दो बड़े जालोंको स्पष्ट जान गया,

* यह घटना सन् १८५८ की है और 'कनफेशन' के १२ वें पृष्ठ पर उसका वर्णन किया गया है।

जिनके द्वारा वे राज्यकी काली-करतूतों पर परदा डालना और उन्हें जनतासे छिपाना चाहते हैं। मैंने लाखों और करोड़ोंकी संख्यामें प्रचारित धर्म व विज्ञानकी पुस्तकोंके उन लंबे-लंबे अध्यायोंको पढ़ा है जिनमें कुछ आदमियोंकी इच्छानुसार दूसरोंको फांसी पर चढ़ा देनेके औचित्य और आवश्यकताकी सफाई पेश की गई है।

विज्ञानके दोनों प्रकारके ग्रंथोंमें—जिसे न्याय-शास्त्र (जूरिस्पुडेंस) कहते हैं व जिसमें फौजदारी कानून भी शामिल हैं उसमें और विशुद्ध विज्ञान-संबंधी ग्रंथोंमें—यही बात अधिक संकीर्णता और विश्वासके साथ तर्कपूर्वक दी गई है। फौजदारी कानूनके संबंधमें तो कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं है। वह तो सफेद भूठ, छल और प्रपंचोंका एक क्रमागत इतिहास ही है, जो मनुष्यद्वारा मनुष्यपर किये गये सभी प्रकारके हिंसात्मक कामोंको, यहां-तक कि मनुष्यद्वारा मनुष्यकी हत्याको भी, न्यायोचित ठहराता है। और डाविनसे लेकर अब तकके वैज्ञानिक ग्रंथोंमें भी जो जीवन-संघर्षको जीवनका आधार मानते हैं, यही बात निहित है। जेना विश्वविद्यालयके प्रोफेसर अर्नेस्ट हेकेल जैसे उस सिद्धांतके ज़बरदस्त समर्थक अपनी पुस्तक संदेहवादियोंकी गीता *Natürliche Schöpfungsge schichte* में स्पष्ट लिखते हैं:—

“मानव-जातिके सांस्कृतिक जीवनमें कृत्रिम चुनाव बहुत लाभदायक प्रभाव डालता है। उदाहरणके लिए श्रेष्ठ स्कूली शिक्षा और लालन-पालन का संस्कृतिकी बहुमुखी प्रगतिमें कितना भारी स्थान है। यद्यपि आजकल बहुतसे आदमी मौतकी सज़ा ‘उदार भाव’से उड़ा देनेकी बड़े जोर-शोरसे वकालत कर रहे हैं, और मानवताके थोथे नाम पर अपने पक्षमें बहुत-सी युक्तियां दे रहे हैं, लेकिन मौतकी सज़ा भी कृत्रिम चुनावकी भांति लाभदायक प्रभाव डालती है। जिस प्रकार एक सुंदर उद्यानको बनाये रखनेके लिए घास-फूस और झाड़-भंखाड़ उखाड़ फेंकते रहनेकी आवश्यकता है; उसी प्रकार उन बहुसंख्यक अपराधियों और बदमाशोंके लिए, जो कभी ठीक ही नहीं हो सकते, मौतकी सज़ा केवल उचित दंड

ही नहीं है, बल्कि संस्कृत मानवजातिके लिए बड़े लाभकी चीज़ है। जिस प्रकार घास-फूसको ठीकसे साफ़ करने पर पेड़ों और पौधोंको अधिक वायु, प्रकाश और बढ़नेके लिए जगह मिलती है, ठीक उसी प्रकार कठोर अपराधियोंका सफ़ाया कर देनेसे संस्कृत मानव-जातिका 'जीवन-संघर्ष' केवल कम ही नहीं हो जायेगा, बल्कि कृत्रिम चुनावका लाभ भी प्रदान करेगा, क्योंकि इस रीतिसे मानव-जातिका पतित अंश शेष जाति पर अपने दुर्गुणों का प्रभाव न डाल सकेगा।”

खेद है कि मनुष्य ऐसी बातें पढ़ते हैं, दूसरोंको पढ़ते हैं और उसे विज्ञानके नामसे पुकारते हैं। लेकिन किसीके दिमागमें यह प्रश्न नहीं उठता कि यह मान लेने पर भी कि बुरे आदमियोंको मार डालना अच्छा है, अच्छे और बुरेका निर्णय कौन करेगा? उदाहरणके लिये मान लीजिए, मैं समझता हूँ कि मि० हैकलसे ज्यादा बुरा और ज्यादा हानिकारक आदमी संसारमें दूसरा नहीं है। लेकिन क्या इसका यह मतलब है कि मैं अथवा मेरे जैसे विचार रखनेवाले और आदमी मि० हैकलको फांसीकी सज़ा दे दें? नहीं, वह जितनी ही बड़ी-बड़ी भूलें करेंगे उतना ही मैं चाहूँगा कि वह अधिक विवेकी और युक्ति-युक्त हों। किसी भी दशामें मैं उन्हें इस प्रकारका व्यक्ति बनने देनेके अवसरसे वंचित नहीं कर सकता।

चर्च और विज्ञानके मिथ्यावादने ही आज हमें उस गढ़में डाल रखा है, जिसमें हम हैं। युगोंसे महीने और वर्षमें एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जिस दिन फांसियां और हत्याएं न होती हों। कुछ आदमी क्रांतिकारियोंकी अपेक्षा सरकारद्वारा अधिक आदमी बध किये जाने पर प्रसन्न होते हैं। अन्य लोग बहुत-से सेनापतियों, भूमिपतियों, व्यापारियों तथा पुलिसवालोंके मारे जाने पर प्रसन्न होते हैं। एक ओर तो हत्याओंके लिए १०-१५ और २५ रूबलके इनाम दिये जाते हैं और दूसरी ओर क्रांतिकारी लोग हत्यारों और जर्बदस्ती संपत्ति छीननेवालोंक, आदर और मान करते हैं और उन्हें शहीदकी पदवी देते हैं।...“उन आदमियोंसे मत डरो

जो शरीरका नाश करते हैं बल्कि उनसे डरो जो शरीर और आत्मा दोनों-का विनाश कर देते हैं ।..”

इन सब बातोंको मैंने बादमें समझा । परंतु एक अस्पष्ट-सी अनुभूति मेरे मनमें उस समय भी थी, जब मैंने इतनी मूर्खतापूर्ण और लजाजनक रीतिसे उस अभागे सिपाहीकी वकालत की थी । इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि मेरे जीवन पर उस घटनाका भारी प्रभाव पड़ा है ।

हां, उस घटनाका मेरे जीवन पर बहुत अच्छा और लाभदायक प्रभाव पड़ा है । उसी समय मैंने पहली बार यह अनुभव किया कि हर प्रकारकी हिंसाकी पूर्तिमें हत्या या हत्याकी धमकी छिपी हुई है, इसीलिए हर प्रकारकी हिंसा हत्याके साथ जुड़ी हुई है । दूसरे यह कि राज्य-शासनकी कल्पना बिना हत्याके नहीं हो सकती और इसीलिए वह ईसाई-धर्मके साथ मेल नहीं खाती । तीसरे यह कि जिसप्रकार पहले चर्चके उपदेशके विषयमें हुआ था, उसी प्रकार हम आज जिसे विज्ञान कहते हैं, वह वर्तमान बुराइयोंकी एक भूठी वकालतके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

अब मेरे निकट यह बात बिल्कुल स्पष्ट है, परंतु उस समय तो वह उस मिथ्यावाद की, जिसके बीच मैं अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, एक क्षीण स्वीकृति-मात्र थी ।

यास्नाया पोल्याना

२४ मई, १९०८

लियो टॉल्स्टॉय

म ४ २ ५ पुस्तक

— ५४ —

महाभारत पात्र	॥) बापू	१॥)
संत-वाणी	१) रोटीका सवाल	१।)
संक्षिप्त आत्म-कथा	१) मेरी कहानी	७)
डायरीके कुछ पन्ने	१) महावीरवाणी	१॥)
बिखरे विचार	॥=) गांधी-विचार-दोहन	१।)
रुपएकी कहानी	२॥) जमनालालजी	१=)
कोढ़	॥॥) रूमीकी कहानियां	॥)
शास्त्रवाद : बुद्धिवाद	।) कर्जदारसे साहूकार	=)
संगल-प्रभात	≡) गीताबोध	।)
नवयुवकोसे दो बातें	=) सर्वोदय	।)
किसानोंका सवाल	=) ग्रामसेवा	।)
रचनात्मक कार्यक्रम	=) भजनावली	१=)
सत्याग्रह	≡) युद्ध-संकट और भारत	।)
प्रेममें भगवान	१॥) रचनात्मक कार्यक्रम—कुछ सुभाव	≡)
लड़खड़ाती दुनिया	१॥) बिनोबाके विचार	१।)
पुरुषार्थ	५) दुखी दुनिया	॥॥)
समन्वय	४) मेरी मुक्तिकी कहानी	१)
बुद्धवाणी	१) भारतीय संस्कृति	१।)

स स्ता सा हि त्य मं ड ल

कनाट सर्कस

: :

नई दिल्ली

